THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL LIBRARY

OU_180327

UNIVERSAL LIBRARY

माधवी-कंकण

रोचक और शिक्षादायक उपन्यास

परलोकवासी श्रीरमेशचन्द्र दत्त-लिखित
बँगला उपन्यास का हिन्दी-अनुवाद

अनुवादक
श्रीजनार्दन झा

प्रकाशक
इण्डियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

सर्वोदय साहित्य मन्दिर
हुसेनीअलम रोड, हैदराबाद (दक्षिण).

पंचम संस्करण]   १९४५   [मूल्य १।-)

Printed and Published by K. Mittra,
at the Indian Press, Ltd.,
Allahabad.

माधवी-कङ्कण

पहला परिच्छेद

बालक और बालिका

गङ्गा के पश्चिमी किनारे पर वीरनगर नाम का एक गाँव है।

एक दिन सन्ध्या-समय गर्मी के मौसम में वीरनगर गाँव के दो बालक और एक बालिका तीनों मिलकर गङ्गा के किनारे बालू पर खेल रहे थे। सूर्यास्त होने का समय था। सन्ध्या की लालिमा धीरे धीरे चारों ओर फैल रही थी। गङ्गा के स्वच्छ जल में सन्ध्याकाल की रक्तप्रभा का प्रतिबिम्ब पड़ने से एक अपूर्व ही शोभा देख पड़ती थी। मानो गङ्गा को पति (समुद्र) से मिलने के लिए दौड़ी हुई जाते देख सन्ध्या ने उसे लाल रङ्ग की साड़ी पहना दी है। धार में कई एक जहाज़ इधर से उधर जा रहे हैं। दिन भर के परिश्रम से थके हुए नाविकगण रसोई बनाने की फ़िक्र में लगे हैं। जहाज़ की रोशनी नदी के चञ्चल प्रवाह पर पड़कर नाच रही है। नदी के निकटवर्ती वीरनगर की अमराई क्रमशः अन्धकार से भरी जाती है। वृक्षों के अन्तर से कहीं कहीं चिराग़ की रोशनी देख पड़ती है और बीच बीच में रसोई आदि बनाने के विषय में किसानों की स्त्रियों की बातचीत का कोई कोई शब्द सुन पड़ता है। किसान लोग गायबछड़ों को साथ लिये अपने अपने घर लौटे आ रहे हैं, गाँव की स्त्रियाँ जो पानी भरने के लिए गङ्गातट पर आई थीं, वे, हाथमुँह धो, कलसी में जल भर कर, सिर पर

रख एक एक कर सभी चली गई हैं। गङ्गा का कछार लोगों से एकदम खाली पड़ गया है। केवल गङ्गा का प्रखर प्रवाह कल-कल शब्द करता हुआ समुद्र से मिलने के लिए दौड़ा जा रहा है। गङ्गा के उस पार बालू का मैदान और घना जंगल अँधियारे में कुछ कुछ दिखलाई दे रहा है। दिन भर गरमी की शिद्दत से बेचैन होकर लोग साँझ को कुछ हरे-भरे से दिखाई दे रहे हैं।

ऐसे समय वे दोनों बालक उस बालिका के साथ खेल रहे थे। बालिका नौ वर्ष की थी। नाम था हेमलता। उसका चाँद-सा गोरा मुखड़ा देखने में बड़ा ही सुन्दर था। उसके मुँह पर जो चारों ओर काले केश बिखरे पड़े थे वे उसके मुखमण्डल की शोभा को और भी अधिक बढ़ा रहे थे। उसका कोमल शरीर लावण्य से भरा था। वह चञ्चल बालिका गन्धर्वकन्या की भाँति सायंकाल में उन दोनों बालकों के साथ गङ्गा की वालुकाराशि पर खेल रही थी।

बड़े लड़के का नाम रमेशचन्द्र था। उम्र तेरह वर्ष की थी। उसके चेहरे पर गम्भीरता और स्थिरता का भाव झलक रहा था। वह वास्तव में चतुर, शान्तस्वभाव और गम्भीर था।

छोटे लड़के की उम्र ग्यारह वर्ष से ज़्यादा न थी। उसे देख-कर कोई यह न कहता कि वह हेमलता का सगा भाई नहीं है। देखने में ठीक हेमलता ही सा सुन्दर था, पर स्वभाव उसका कुछ तीव्र और उत्कट था। स्वभाव उग्र होने पर भी उसके चेहरे से तेज और पुरुषार्थ का भाव अवश्य व्यञ्जित हो रहा था।

दोनों बालक बड़े परिश्रम से बालू का घर बना रहे थे दोनों के जी में स्पर्धा बनी थी। ख़ूबसूरत घर बनाने के पीछे दोनों ही हैरान थे। हेमलता देखेगी कि किसका घर अच्छा बना है। वह जिसके घर को सराहेगी उसी की जीत होगी। नरेन्द्र घर बनाने में बड़ा चतुर था, किन्तु स्वभाव का कुछ चञ्चल और उग्र था। हेम जब उसके पास आकर खड़ी हो जाती तब उसका

घर अच्छा बन जाता था। नरेन्द्र चाहता था कि हेम बराबर उसके पास खड़ी रहे। यदि उसके मन में यह बात न थी तो वह हेम को रमेश का घर देखने के लिए जाते देख क्रोध क्यों करता ? किन्तु बालू का घर देर तक थोड़े ही ठहर सकता है ? नरेन्द्र ने दो-तीन बार परिश्रम करके अच्छा घर बनाया, पर थोड़ी ही देर में वह गिर पड़ा। नरेन्द्र की बार बार की चेष्टा विफल हुई। वह बड़ी चिन्ता में पड़ गया।

हेम इस बार रमेश का घर देखने न जायगी। सचमुच वह कदापि न जायगी। नरेन्द्र, एक बार तुम और घर बनाओ। नरेन्द्र आँखों के आँसू पोंछकर फिर बड़े हर्ष से घर बनाने लगा।

कुछ देर में घर तो बन गया पर कारीगरी का काम कुछ थोड़ा-सा बच रहा। हेम ने सोचा, नरेन्द्र की जीत तो आखिर होहीगी, किन्तु रमेश अकेला है, एक बार उसके पास न जाऊँगी तो वह क्या कहेगा। यह सोचकर वह जलतरङ्ग की भाँति उछ-लती-कूदती और केशराशियों को नचाती हुई रमेश के पास गई। रमेश का हाथ उतना सधा हुआ नहीं था। यद्यपि वह बालू का घर बनाना नहीं जानता था तथापि अपनी बुद्धि के ज़ोर से उसने किसी तरह एक प्रकार का घर बना लिया था, पर वह वैसा अच्छा नहीं, जैसा कि बनना चाहिए था।

नरेन्द्र एक बार घर बनाता था, और एक बार हेम की ओर देखता था। हेम को रमेश के पास खड़ी देख नरेन्द्र को क्रोध हो आया, उसके हाथ काँपते ही बना-बनाया घर गिर गया। घर बेशक बढ़िया बना था, किन्तु जब गिर ही पड़ा तब फिर उसकी बात ही क्या ? नरेन्द्र ने क्रुद्ध होकर हेम और रमेश की देह पर बालू फेंक दी। जीत रमेश की हुई, क्योंकि उसने जैसा भी कुछ हो, एक घर बना तो लिया पर नरेन्द्र से तो एक भी घर न बना।

नरेन्द्र, अभी से सावधान हो जाओ। आज तुमसे एक बालू का घर न बन सका। देखो, अभी संसार का घर बसाना तुम्हारा बाक़ी ही है। ऐसा प्रयत्न करना जिसमें वह घर न बिगड़े। देखो, रमेश कहीं तुम्हें चकमे में डालकर तुम्हारी धन-सम्पत्ति और हेम को अपना न ले! नरेन्द्र सावधान!

नरेन्द्र की रोष-भरी बोली सुनकर गङ्गा के घाट से एक सत्रह वर्ष की विधवा स्त्री वहाँ आ पहुँची। वह रमेश की जेठी बहन थी। नाम था शैवलिनी।

शैवलिनी ने वहाँ आकर अपने भाई को डाटा। रमेश ने धीरे धीरे कहा—"बहन, मैंने कुछ नहीं किया है, नरेन्द्र से बालू का घर नहीं बनता, इसी लिए वह रो रहा है। विश्वास न हो तो हेम से पूछ लो।" "उससे घर नहीं बनता तो मैं अपने हाथ से उसका घर बना दूँगी"—इस तरह सान्त्वना देकर शैवलिनी चली गई।

हेम और नरेन्द्र का झगड़ा शीघ्र मिट गया। नरेन्द्र को रोते देख हेम आँखों में आँसू भर कर बोली—"भैया, तुम क्यों रोते हो? मैं एक बार रमेश का घर देखने गई थी, लेकिन घर तो तुम्हारा ही अच्छा बना था। तुमने तोड़ क्यों डाला? तुम्हारे पास तो मैं बहुत देर से थी। रमेश के पास एक बार सिर्फ़ घर देखने के लिए गई थी। इसके लिए तुम रिस क्यों करने लगे? मैं तुम्हें रोते देखती हूँ तो न मालूम मेरी आँखों में आँसू क्यों भर आते हैं?" नरेन्द्र का क्रोध ठंडा हुआ। वह क्या कभी हेम के ऊपर देर तक नाराज़ रह सकता है?

अब उन दोनों में जो बातें हुईं उन्हें सुनिए। आकाश में जो इतने तारे निकल आये हैं, ये क्या हैं? फूल हैं, या मोती के बड़े बड़े दाने बिखरे पड़े हैं? नरेन्द्र यदि उनमें से किसी तरह एक भी पा सकता तो वह उसे लेकर क्या करता? करता क्या? उसे गूँथ कर हेम के गले में पहना देता। यह देखो, चन्द्रोदय

होने के पहले अजब तरह की कैसी सफ़ेदी देख पड़ती है ! चाँद भी निकल आया। बतलाओ तो यह चाँद कहाँ से निकल आया है ? मैं समझती हूँ, यह धरती के नीचे से निकल आया है। यदि नदी के उस पार हम लोग किसी तरह जा सकते तो चन्द्रमा को हाथ से पकड़ लेते। नहीं, यह नहीं हो सकता। यदि ऐसा सम्भव होता तो जहाँ से चाँद निकलता है वहाँ के लोगों ने उसे अब तक पकड़ लिया होता। हम लोग नाव पर चढ़कर बहुत दूर चले जाते तो वहाँ पहुँच जाते जहाँ से चन्द्रमा निकलता है। वहाँ के लोग कैसे होते हैं, यह देखने की इच्छा होती है। नरेन्द्र बड़ा होगा तो ज़रूर एक बार वहाँ जायगा। हेम, तुम भी उसके साथ जाना।

हम इस अवसर पर इतना कह देना उचित समझते हैं कि इस संसार में कितने ही लोग इन बालकबालिकाओं की भाँति—गङ्गा की बालू के समान निःसार वस्तु के लिए आपस में झगड़ते हैं और चन्द्रमा को हाथ से पकड़ने के लिए वृथा चेष्टा करते हैं। पाठकगण, आप लोग विचार कर देखिए, इस संसाररूपी बृहत् नाट्यभवन में लोगों का कैसा समारोह है ? सब लोग अपने अपने उद्देश्य को लेकर किस प्रकार अस्तव्यस्त हो रहे हैं। कौन कह सकता है कि सूत्रधार ने क्या सोचकर नाट्यलीला के लिए इतना बड़ा परदा खड़ा कर रक्खा है।

दूसरा परिच्छेद

चतुर ज़मींदार

नरेन्द्रनाथ के पिता का नाम वीरेन्द्रनाथ दत्त था। वे एक धनाढ्य और नामी ज़मींदार थे। उन्होंने गाँव में बड़े बड़े ऊँचे महल और अटारियाँ बनवाकर अपने नाम के अनुसार उस गाँव का नाम "वीरनगर" रक्खा था। वीरेन्द्रनाथ का शील-स्वभाव ऐसा अच्छा था कि सभी लोग उनका आदर करते थे, और उनके प्रबल प्रताप से डरते थे। बड़े बड़े जागीरदार पठान और स्वयं सूबेदार भी उन्हें आदर की दृष्टि से देखते थे।

बाल्यकाल में वीरेन्द्र, नवकुमार नामक एक दरिद्र बालक के साथ, एक ही पाठशाला में पढ़ता था। नवकुमार अत्यन्त सुशील और नम्र था। वह सर्वदा तेजस्वी वीरेन्द्र का वशवर्ती बना रहता था। इसलिए वीरेन्द्र उसे हृदय से प्यार करने लग गया था। बालिग़ होने पर जब वीरेन्द्र ने ज़मींदारी का काम अपने हाथ में लिया, तब उन्होंने नवकुमार को बुलाकर मन्त्री (दीवान) के पद पर नियुक्त किया। नवकुमार बड़ा ही बुद्धिमान और चतुर था। वह बड़ी योग्यता से ज़मींदारी का काम चलाने लगा। नवकुमार स्वार्थी होने पर भी एकदम नीचप्रकृति का मनुष्य न था। वीरेन्द्र से प्रार्थना करके उसने दोचार गाँव अपने नाम से लिखा लिये थे। भय से हो अथवा कृतज्ञता के कारण नवकुमार वीरेन्द्र की ज़मींदारी की किसी प्रकार की हानि नहीं करता था। वीरेन्द्र की मृत्यु के समय नरेन्द्र बहुत छोटा था। इससे वीरेन्द्र अपनी ज़मींदारी और पुत्र का भार नवकुमार को सौंप कर आप इस संसार से चल बसे।

प्रेम की गति भी बड़ी विचित्र है। वह सर्वदा एक सी नहीं रहती। माता-पिता का जितना प्रेम अपनी सन्तति पर होता है उतना प्रायः सन्तान का अपने माता-पिता पर नहीं होता। स्वार्थ-परता कृतज्ञता को धर दबाती है। लोभ दया को स्थिर नहीं रहने देता। नवकुमार की कृतज्ञता शीघ्र जाती रही।

नवकुमार यद्यपि एकबारगी अन्यायशील न था तथापि था तो जन्म का दरिद्री। धीरे धीरे उसके हृदय में वीरेन्द्र की समस्त ज़मींदारी ले लेने का लालच बढ़ने लगा। उसका वह लोभ अनेक प्रकार से रोकेने पर भी न रुका। लोभ ने उसके चित्त को चञ्चल कर दिया। वीरेन्द्र का बेटा बिलकुल बच्चा था। वीरेन्द्र की स्त्री पहले ही मर चुकी थी। लड़के की सम्पत्ति की रक्षा करे, ऐसा परिवार में एक भी समीपी व्यक्ति न था। जो दो-एक थे भी वे नवकुमार से मिल गये थे। जो लोग वीरेन्द्र के अभि-भावक थे उन लोगों ने इस विषय पर कुछ ध्यान न दिया; वे ही कर क्या करते?

वीरेन्द्र की सारी ज़मींदारी मैं ले लूँ, पहले नवकुमार का यह उद्देश्य न था। वीरेन्द्र के जीवनकाल अवस्था में उसने जो दो-चार गाँव उससे माँगकर ले लिये थे उन्हीं को वह अपने लिए काफ़ी समझता था, किन्तु अब उसकी तृष्णा बढ़ चली। वह धीरे धीरे वीरेन्द्र की ज़मींदारी को हड़पने लगा। नवकुमार ने सोचा—"मेरे एक ही लड़की है, उसे नरेन्द्र के साथ ब्याह दूँगा। आख़िर वो वीरेन्द्र की ज़मींदारी मेरे नाती ही की होगी। नाबालिग़ के नाम से ज़मींदारी रहने से पीछे गोलमाल हो सकता है। इसलिए अभी अपने नाम से ज़मींदारी का काम चलाऊँ तो फिर किसी बात का सन्देह न रह जायगा।" इन सब बातों को भली-भाँति सोच-विचार कर नवकुमार अपने उद्देश्यसाधन में लग गया। उस समय सूबेदार के दरबार में प्रधान प्रधान ज़मींदारों और जागीरदारों की ओर से एक एक वकील रहा

करता था। वकील लोग अपने अपने मालिक की ओर से बीच बीच में उपहार आदि देकर सूबेदार को प्रसन्न रखते थे और मालिक का जो कुछ काम होता था उसको करते थे। सूबेदार के यहाँ अपना एक वकील न रहने से ज़मींदारों का विशेष अनिष्ट होने की सम्भावना थी, बल्कि ज़मींदारी छिन जाने का भी खटका बना रहता था।

वीरनगर के ज़मींदार का वकील इस समय नवकुमार से वेतन पाता था। उसने वङ्ग देश के क़ानूनगो से निवेदन किया कि जब से "वीरेन्द्रनाथ की मृत्यु हुई है तब से उनकी ज़मींदारी का ख़ज़ाना नियमित रूप से नहीं आता। वीरेन्द्र का एक कर्मचारी नवकुमार नाम का है। उस ज़मींदारी का भार वही सँभालता है और अपने घर से समय समय पर ख़ज़ाना दाख़िल करता है। वही इस समय वीरेन्द्र के समस्त परिवार का भरण-पोषण करता है और वही उनका सबसे बढ़ कर आत्मीय है।" इस निवेदन के साथ वकील ने क़ानूनगो महाशय को घूँस में पाँच हज़ार रुपया दिया। इस निवेदन के विरुद्ध कोई उज्र करनेवाला न था, अतएव उसी घड़ी वीरेन्द्र का नाम ख़ारिज करके नवकुमार का नाम ज़मींदारी सरिश्ते पर चढ़ा दिया गया। आज से वीरनगर का ज़मींदार नवकुमार मित्र हुआ।

ज़मींदार के हृदय में नये नये भावों का उदय होने लगा। पहले जो नरेन्द्र के पिता के पाँव पूजता था, जिसने इतने दिनों तक नरेन्द्र को बड़े यत्न से पाला-पोसा है, उसी की आँखों का शूल आज वह पितृ-मातृ-हीन बालक नरेन्द्र बन गया—काँटे की तरह उसकी आँखों में खटकने लगा। नवकुमार के मुँह पर तो नहीं, किन्तु परोक्ष में सब लोग यही कहा करते थे कि "ज़मींदारी नरेन्द्र के बाप की है।" नवकुमार की ज़मींदारी है, यह कोई नहीं कहता था। प्रजा भी नरेन्द्र को ही ज़मींदार का पुत्र कहती और उसे आदर की दृष्टि से देखती थी। नया ज़मींदार

नवकुमार इन सब बातों को कब सह सकता था। वह मन ही मन कहने लगा, "क्या मैंने अपवाद सहने ही के लिए यह ज़मींदारी ली है? फिर नरेन्द्र के साथ मेरी लड़की हेमलता का ब्याह हो जाने पर कौन न कहेगा कि बाप की ज़मींदारी बेटे ने पाई? मेरा नाम तो कोई न लेगा। तब इतनी बड़ी हैरानी उठाने से क्या लाभ हुआ? मैं ज़मींदार होकर भी क्या पीछे उस बालक का दीवान बनकर रहूँगा? क्या फिर मुझे दीवानगिरी का ही काम करना पड़ेगा? यत्नपूर्वक ज़मींदारी की रक्षा करके अन्त में फिर क्या यह सब नरेन्द्र को लौटा देना पड़ेगा?" दीर्घदर्शी नवकुमार ने इस प्रकार मन ही मन सोच-विचार कर स्थिर किया कि "हम या तो पोष्य पुत्र लेंगे या किसी दरिद्र बालक के साथ अपनी कन्या हेमलता को ब्याह देंगे।"

स्वार्थलोलुप, चतुर नवकुमार इस प्रकार अपने मन में निश्चय करके कार्यसाधन में तत्पर हुआ। पास ही एक गाँव में गोकुल-चन्द्र दास नामक एक सज्जन व्यक्ति रहते थे। वे एक पुत्र, एक विधवा कन्या और थोड़ी सी सम्पत्ति छोड़कर इस संसार से चल बसे थे। पुत्र का नाम रमेशचन्द्र दास और कन्या का नाम ैवलिनी था। नवकुमार इस रमेशचन्द्र को बुलाकर लालन-पालन करने लगा। ैवलिनी अपनी ससुराल में रहा करती थी। कभी कभी वह अपने भाई को देखने के लिए वीरनगर आती और दो-एक दिन रहकर फिर चली जाती थी। भाई के सिवा इस संसार में उस विधवा के और दूसरा कोई न था।

नवकुमार एक-दम दयाशून्य न था। उसने वीरेन्द्र के परिवारवालों को घर से न निकाला, वे लोग आज्ञाकारी सेवक की भाँति नवकुमार के घर का काम-धन्धा करने लगे। वे दिन-रात नवकुमार की स्त्री की प्रशंसा और ख़ुशामद किया करते थे, किन्तु छिपकर अपने भाग्य को कोसते और विधाता को दोष देते थे। नवकुमार अब भी नरेन्द्र का पालन-पोषण करता था।

वह जब तब अपने प्रधान कर्मचारियों से मुसकुराकर कहा करता—"क्या करें, ज़मींदारी का काम वीरेन्द्र कुछ नहीं समझते थे। उन्होंने सारी ज़मींदारी को एक तरह से खो ही डाला था। दूसरे के हाथ में उनकी ज़मींदारी चली जाती तो उनके पुत्र तथा अन्यान्य कुटुम्बियों को कष्ट होता, इसलिए हमीं ने उनकी सारी सम्पत्ति अपने नाम से ख़रीद ली। सच पूछो तो ज़मींदारी में कुछ विशेष लाभ नहीं है। देखो, अनाथ नरेन्द्र को अभी हमीं पाल-पोस रहे हैं; वीरेन्द्र के और कितने ही कुटुम्बी इस समय निरवलम्ब हैं, उन लोगों को खाने-पहरने को हमीं देते हैं। क्या करें? मनुष्य का दुःख हमसे देखा नहीं जाता। तुम लोग इस बात को सोचकर देखो, ईश्वर ने रुपया किस लिए दिया है। पाँच को खिलाकर खाने ही में सुख है। न कि रुपया छिपाकर रखने में। हमारे पास कुछ रहे चाहे न रहे, पर दूसरे का दुःख हम नहीं देख सकते। तुम्हीं बतलाओ, यदि वीरेन्द्र के परिवार का हम पालन न करें तो उनकी क्या दशा हो?"

यह सुनकर मुसाहब लोग कहा करते—"सही है, यह आप ही से हो सकता है, आप धन्य हैं। आप साक्षात् दया के अवतार हैं, इसी से ऐसा धर्म का काम कर रहे हैं, दूसरा कौन करेगा? एक से एक बढ़कर ज़मींदार हैं। आप जितना वीरेन्द्र के परिवार के लिए कर रहे हैं, ऐसा कौन किसके लिए करता है? यदि आप नरेन्द्र को अपने यहाँ न रख लेते तो उसे कौन खाने को देता? या उसके और ज्ञातिवर्ग का कौन भरण-पोषण करता? यह केवल आप ही के अनुग्रह का फल है कि उन्हें दोनों समय भर पेट अन्न मिल जाता है। आपके सदृश धर्मात्मा कौन होगा?"

यह सुनकर नवकुमार मारे .खुशी के फूलकर कुप्पा हो जाता। आँखें बिस्फारित कर और मुसकराकर गद्‌गद कण्ठ से वह कहता—"नहीं बाबू, हम न तो धर्मात्मा हैं और न यही जानते

हैं कि धर्म-अधर्म किसे कहते हैं। सच बात यह है कि दूसरों का दुःख देखकर हमसे रहा नहीं जाता, हम उनका कुछ न कुछ उपकार अवश्य कर देते हैं। यह हमारा आज का नहीं, किन्तु जन्म ही का स्वभाव है। कुछ वीरेन्द्र का परिवार जानकर हम ऐसा नहीं करते। इसमें हमें पाप हो चाहे पुण्य हो, हम उसका कुछ ख़याल नहीं करते, केवल अपना कर्त्तव्य समझकर करते हैं।"

हम ऊपर कह आये हैं कि नवकुमार एक-दम खोटा आदमी न था। आप भी सोचकर देखिए, सब लोग नवकुमार को भाग्यवान् और बुद्धिमान समझकर उसका आदर करते हैं। सभी उसे दयालु और देव-ब्राह्मण का भक्त जानकर उसका सुयश गाते हैं। कितने ही सभा-समाज के नेता तो मुक्तकण्ठ से यह कहा करते "नवकुमार के द्वारा ही हमारा सभा-समाज प्रतिष्ठित है। हम सभापरिचालकों का सर्वत्र आदर होता है, सब जगह प्रशंसा होती है और सभ्य-मण्डली में बैठने को ऊँचा आसन मिलता है। जिस दिन महामहिम माननीय, दयाशीलसम्पन्न, धर्मसंस्थापक महोदय नवकुमार बाबू इस संसार में न रहेंगे उस दिन समाज मानो अपने सिर का अमूल्य रत्न खो देगा। उस दिन समाज अन्धकार के गड्ढे में गिर जायगा। समाज की सभी बातें चलविचल हो जायँगी। धर्म के ऊपर भारी आघात पहुँचेगा।" जिनका आदर सर्वत्र होता है, जिन्हें सभी लोग मानी, ज्ञानी और धार्मिक समझते हैं उनकी निन्दा करने या उनकी स्वार्थपरता की समालोचना करने का हमें तुम्हें क्या अधिकार है?

तीसरा परिच्छेद

बाल-विधवा

यह पूर्व परिच्छेद में कहा जा चुका है कि शैवलिनी साँझ को गङ्गातट से लौट आई। वह सती-साध्वी शान्तचित्त विधवा सायङ्काल का कृत्य समाप्त करके उन छोटे बालक-बालिका के साथ गप्पें हाँकने को बैठी। शैवलिनी महीने दो महीने में एक बेर वीरनगर आ जाती थी। वह गप्पें करना ख़ूब जानती थी। उसके बाल-बच्चा आदि कुछ न था, इससे वह सभी बालकों को अपनी सन्तान के बराबर मानती थी। यही कारण है कि शैवलिनी लड़के-लड़कियों की बड़ी प्रियपात्र थी। सभी छोटे-बड़े लड़के उसे जी से चाहते थे। "शैवलिनी आई है और कहानी कहने बैठी है" यह सुनकर उस प्रकाण्ड महल के सभी बालक बालिकागण एक एक करके आ जुटे। उन बालक-बालिकाओं में कोई भी शैवलिनी के अनादर का पात्र न था। किसी को गोद में, किसी को पार्श्व में और किसी को सामने बैठाकर शैवलिनी महाभारत की अमृतमयी कथा कहने लगी। हम यहाँ पाठकों को शैवलिनी का कुछ परिचय देना उचित समझते हैं।

शैवलिनी के पिता की सामान्य अवस्था थी, पर थे वे अत्यन्त सज्जन। रमेशचन्द्र और शैवलिनी ने माता-पिता के शील-स्वभाव और सद्गुणों का अंश कुछ-कुछ पा लिया था। शैवलिनी अत्यन्त छोटी उम्र में विधवा हो गई थी। उसे अपने ब्याह तक की याद न थी कि कब हुआ था। संसार के सुख-दुःख की प्रायः कोई बात वह न जानती थी। वह एक प्रकार से जन्म की ही कुमारी थी। वह केवल माता की सेवा और छोटे भाई के लाड़-प्यार के सिवा कुछ न जानती थी।

शैवलिनी के पिता की मृत्यु होने के बाद उन लोगों की दशा दिन दिन मन्द होने लगी, यहाँ तक कि अन्न का कष्ट कैसा

होता है, इसका भी अभागिनी शैवलिनी और उसकी माता को ज्ञान हो गया। किन्तु वह प्रशान्तचित्त सुशीला विधवा (शैवलिनी) ज़रा भी धैर्यच्युत न हुई। वह बड़े तड़के उठकर स्नान-पूजा आदि नित्यकृत्य से छुट्टी पाकर अपनी बूढ़ी माँ और छोटे भाई को रसोई बनाकर खिलाती और घर का सारा काम अपने हाथ से करती थी। इसी प्रकार वह दोनों साँझ अपनी माता की सेवा और छोटे भाई के लालन-पालन में लगी रहती थी।

शैवलिनी के काले भँवरे सरीखे केश, बड़ी बड़ी आँखें और प्रसन्न मुख देखकर लोगों के हृदय में उस पर स्वाभाविक विशुद्ध प्रेम उत्पन्न हुए बिना नहीं रहता था।

शैवलिनी इस संसार में कुछ नहीं चाहती थी। न वह सखी-सहेली चाहती थी, न उसे किसी विशेष सुख की अपेक्षा थी। जो आम, जामन, कटहल और हरसिंगार आदि के पेड़ उसके घर को चारों ओर से घेरे थे, जो दोपहर को ठंढी छाँह और साँझ को मर्मर शब्दों का सुख देते थे वही उसके सच्चे सहचर थे। शैवलिनी उन्हीं के साथ खेलकर जब तब अपना जी बहलाती थी। जैसे वे पेड़-पौधे प्रकृति की सन्तान थे, वैसी ही प्रकृति की सन्तान शैवलिनी भी थी। जो जगदीश्वर उन पेड़ों के रक्षक थे वे ही शैवलिनी के भी थे। शैवलिनी बाल्यावस्था में विधवा हुई। वह प्रेम की भिखारिन न थी, क्योंकि सारा संसार ही उसके प्रेम का स्थान था। पेड़ों पर बैठकर जो पक्षी गान करते थे वे भी शैवलिनी के प्रेम की वस्तु थे। वह उन पक्षियों के स्वर में स्वर मिलाकर गान करती और प्रतिदिन उन्हें खाने को चावल देती थी। शैवलिनी जब वृद्धा माता को सेवा द्वारा सन्तुष्ट कर सकती तब वह अपने को धन्य मानती, तब उसका हृदय प्रेम से उल्लसित हो उठता था। माता को सुखी देखकर उसकी आँखों में आनन्दाश्रु भर आते थे। जब वह बालक रमेश को गोद में लेकर उसका मुँह चूमती, जब छोटा-सा बालक प्रसन्न होकर

'बहन' कहकर शैवलिनी का चुम्मा लेता, तब शैवलिनी का हृदय यथार्थ में ही आनन्द से विह्वल हो उठता और प्रेमाश्रु से उसका अञ्चल भीग जाता था।

जब सन्ध्या समय शैवलिनी निस्तरङ्ग शान्त नदी के गर्भ में चन्द्रतारागणमण्डित निर्मल आकाश का प्रतिबिम्ब देखती तब उसे भगवान् की अद्भुत महिमा का स्मरण हो आता था। जिस ईश्वर ने चन्द्रमा, तारागण और नदी को सिरजा है; जिसने चिड़ियों के प्रेमाधार छोटे छोटे बच्चे दिये हैं; और जिसने शैवलिनी को रमेश-सा भाई देकर दया दिखलाई है, उस ईश्वर के महोपकार का जब उसे स्मरण हो आता था तब उसके हृदय में अनन्त प्रेम की तरङ्गें लहराने लगती थीं। शैवलिनी पति-पुत्र-विहीना है। उसके प्रेम का एक-मात्र भागी कोई न था। इसलिए बरसाती नदी के प्रवाह की भाँति उसका स्नेहजल चारों ओर जिधर पाता उधर ही वह जाता था। गाँव के समस्त बालकों और बालिकाओं को शैवल बहुत प्यार करती, यहाँ तक कि पशु-पक्षियों को भी वह प्यार की दृष्टि से देखती थी। यद्यपि वह अनाथा और दरिद्रिणी थी तथापि उसका हृदय उन्नत था। संसार में शैवलिनी के समान प्रेमिक और कौन होगा? पृथ्वी जैसी विस्तृत है, समुद्र जैसा गम्भीर है और आकाश जैसा अनन्त है, वैसा ही विस्तृत, गम्भीर और अनन्त शैवलिनी का प्रेम भी था।

इसी भाँति कुछ दिन बीतने पर शैवलिनी की माँ परलोक-गामिनी हुई। धीरस्वभाव, सद्वंशजात, सुन्दर सुशील रमेशचन्द्र को अपनी कन्या के साथ ब्याह देने की इच्छा से नवकुमार वीरनगर ले आया। जिन लोगों की सेवा के लिए शैवलिनी ससुराल छोड़े हुए थी, उन लोगों के न रहने से शैवलिनी फिर अपनी ससुराल चली गई और वहीं रहने लगी।

चौथा परिच्छेद

यह बालिका किसकी है ?

जिस घटना का उल्लेख पूर्व परिच्छेद में हुआ है उसको बीते चार वर्ष हुए। चार वर्ष में प्रकृति का कितना परिवर्तन होता है, यह पाठकगण स्वयं अनुमान कर लेंगे।

रमेशचन्द्र की अवस्था इस समय सत्रह वर्ष की है। वे अब बालक नहीं हैं किन्तु एक धीर, साहसी, सुशील, शान्त और धर्म्म-परायण नवयुवक हैं। उनका प्रसन्न मुख और शील से भरे हुए दोनों नेत्र ही उनकी गम्भीरता और सुजनता का परिचय दे रहे हैं।

नरेन्द्र भी देखते ही देखते १५ वर्ष का हो गया। इसने युवापन में अभी पैर रक्खा ही है। रमेश की अपेक्षा वह अधिक गोरा और तेजस्वी था, उसका शरीर लम्बा और पुष्ट था। चेहरा रोबदार था, किन्तु वह अत्यन्त तीव्र, क्रोधी और असहिष्णु था। नवकुमार के तिरस्कार को वह बरदाश्त नहीं कर सकता था। रमेशचन्द्र के यथार्थ गुणों की प्रशंसा भी उससे सही नहीं जाती थी। हमेशा उसका मुँह लाल और भौंहें चढ़ी ही रहती थीं। नरेन्द्र अब तक इतना भी जो कुछ सह रहा था वह केवल हेमलता के लिए। मरुभूमि में एक-मात्र जल के स्रोत की भाँति हेमलता का सुन्दर मुखचन्द्र नरेन्द्र के सन्तप्त हृदय को शान्त और शीतल करता था। हेमलता के लिए वह नवकुमार का तिरस्कार भी सह लेता था और अपने उत्कट क्रोध को भी मन में ही दबा रखता था।

हेमलता अब तेरह वर्ष की हुई। उसके शरीर में नवयौवन के सभी चिह्न दिखाई देने लगे। हेमलता के लिए पद्माकर का यह पद्य चरितार्थ होने लगा—

ऐ अलि, या बलि के अधरान में आनि चढ़ी कछु माधुरई सी।
ज्यों पदुमाकर माधुरी त्यों कुछ दो उन पै चढ़ती उनई सी॥

ज्यों कुच त्यों ही नितम्ब चढ़्यो कछु ज्यों ही नितम्ब त्यों चतुराई सी।
जानि न ऐसी चढ़ाचढ़ि में कहिधों कटि बीचहि लूट लई सी॥

उस नवगठित कमलविनिन्दक कोमल शरीर में कैसे कैसे नवीन भावों का उदय होता था, उनकी वर्णना में हम अक्षम हैं। तब हेम के आचरण से जो भाव लक्षित होते हैं केवल उन्हीं का हम कुछ बखान कर सकेंगे। हेम अब भी नरेन्द्र के साथ बड़े प्यार से बातचीत करती है। नरेन्द्र के साथ बातचीत करके वह बहुत प्रसन्न होती है, किन्तु अब वह नरेन्द्र के मुँह की ओर देर तक नहीं देखती, सिर नीचा करके धीरे धीरे बात करती है। एक बार नरेन्द्र के मुँह की ओर पलक उठाकर देखती है, फिर तुरन्त आँखें नीची कर लेती है। हेम की प्यासी आँखें नरेन्द्र को बार बार देखकर भी तृप्त नहीं होतीं। वह चाहती है कि निर्निमेष लोचन से बराबर नरेन्द्र के मुँह की ओर ताकती रहे, पर सङ्कोच ऐसा नहीं करने देता। लज्जा उसके सिर को नीचे की ओर झुका देती थी। नरेन्द्र की बात को वह बारंबार सोचती और मन ही मन उमगती थी। जब सायंकाल के समय नरेन्द्र नाव पर चढ़कर गङ्गा की धार में इधर-उधर फिरता था तब हेम झरोखे पर बैठकर स्थिर दृष्टि से उसके जलविहार का तमाशा देखा करती थी। जब तक नरेन्द्र की नाव हेम की दृष्टि से बाहर न होती तब तक वह उसी ओर दृष्टि किये बैठी रहती थी। साँझ हो जाने पर जब नरेन्द्र घर आकर हेम का नाम लेकर पुकारता तब हेम के आनन्द की सीमा न रहती थी। उसका सम्पूर्ण शरीर पुलकित हो जाता और हृदय ख़ुशी के मारे नृत्य करने लगता था। जब नरेन्द्र दो-एक दिन के लिए कहीं अन्यत्र चला जाता तब हेम को खाना-पीना कुछ न सुहाता और वह अनमनी-सी होकर रहती थी।

नरेन्द्र के ऊपर जो हेम का ऐसा हार्दिक प्रेम था, नरेन्द्र को जो वह हृदय से इतना चाहती थी, यह कोई न जानता था।

कबूतर जिस तरह अपने बच्चे को बड़े यत्न से घोंसले में छिपाये रहता है, मुग्ध बालिका भी उसी तरह अपने इस नये भाव को हृदय में बड़े यत्न से छिपाये रहती थी। वह अपने मन के इस अपूर्व भाव को आप ठीक ठीक नहीं समझ सकती थी। न समझने पर भी वह इस प्रिय भाव को लोगों से क्यों छिपाती थी ? यह हम नहीं कह सकते।

वृद्ध नवकुमार हेम को अब भी बालिका ही समझता था। उसकी भोली सूरत देखकर भला वह ऐसा क्यों न समझता ? ब्याह कर देने से उसकी एक-मात्र कन्या दूसरे की हो जायगी, इस भय से उसने जितने दिन हो सका उसे अविवाहित अवस्था में ही रक्खा। रमेशचन्द्र को भी हेम के हृदय का कुछ पता न लगा। लगता कैसे ? हेम उसके साथ सदा ही निश्छल व्यवहार रखती, निःसङ्कोच होकर बातचीत करती थी। रमेशचन्द्र से वह प्रति-दिन पढ़ना-लिखना सीखती थी, रोज़ ही उसको अपना पाठ सुनाती और उसके उपदेश को ग्रहण करती थी। नरेन्द्र जब कभी हेम को पढ़ाने बैठता तब हेम का चित्त न मालूम क्यों चञ्चल हो जाता था। वह अनेक प्रयत्न करने पर भी अपने मन को स्थिर नहीं रख सकती थी। नरेन्द्र पढ़ाकर जब उससे कुछ पूछता तब वह भली भाँति उत्तर नहीं दे सकती थी। अच्छी तरह याद किया हुआ पाठ भी नरेन्द्र के आगे भूल जाती थी। घर की कोई ऐसी घटना न थी जो हेम रमेश के कानों तक न पहुँचाती। रमेश के उपदेश के ख़िलाफ़ वह कोई काम न करती थी। नरेन्द्र हेम का उपदेशक न था। वह जब कभी हेम के पास पढ़ने के समय आता था तब प्रस्तुत बात को छोड़कर वह और ही तरह की बात करने लग जाती या देर तक कुछ न बोलती थी। इसलिए नरेन्द्र समझता था कि बालिका के हृदय में जो कुछ प्रणय या भक्ति है वह रमेश के ही लिए है। रमेश ही उसका एक-मात्र प्रेमाधार है।

पाँचवाँ परिच्छेद

बिदाई

इसी तरह कुछ समय बीता। एक दिन साँझ को रमेश और नरेन्द्र एक नाव में बैठकर गङ्गा के प्रवाह में इधर-उधर घूम-फिरकर दिल बहला रहे थे। नरेन्द्र अपना बल दिखलाने के लिए माँझी को हटाकर दोनों हाथों से दो डाँड़ लेकर नाव चलाने लगा। नाव बड़े वेग से बह चली। रमेश चुपचाप बैठा हुआ सायङ्काल की प्राकृतिक शोभा देख रहा था। रमेश और नरेन्द्र में कभी हार्दिक प्रेम या सहानुभूति न थी। दोनों का स्वभाव भिन्न भिन्न था। आज एक छोटी-सी बात पर दोनों में वाद-विवाद होने लगा। नरेन्द्र के हाथ से सहसा एक डाँड़ छुट जाने से वह गिर पड़ा। यह देखकर रमेश ने ख़ूब ज़ोर से हँसकर कहा—जिसका काम है, उसी को करने दो। वीरता दिखलाने की आवश्यकता नहीं।

उस समय हेम गङ्गा की निकटवर्ती अटारी पर खड़ी होकर यह दृश्य देख रही थी। हेमलता के सम्मुख अपने को इस प्रकार अपदस्थ होते देख नरेन्द्र को मर्मान्तिक कष्ट हुआ। उस पर रमेश की यह रहस्यभरी बात उसे और भी असह्य हो उठी। रमेश की इस हँसी ने उसके ज़ख़्मी जिगर पर मानो नमक छिड़क दिया। नरेन्द्र ने रमेश को अत्यन्त कठोर शब्दों में उत्तर दिया। क्रमशः विवाद बढ़ने लगा। नरेन्द्र का हृदय तुरन्त क्रोध से जल उठा। उसने उचित-अनुचित का कुछ विचार न कर दो-चार खरी-खोटी बातें रमेश को कह सुनाईं। रमेश भी अब अपने क्रोध को न रोक सका। उसने कहा—तुम जैसे बदमिजाज़ों के साथ कलह करना मानो अपनी इज्ज़त गँवाना है।

तुम्हारे साथ विवाद करने में भी हम अपना अपमान समझते हैं।

रमेश के मुँह से यह तिरस्कार-भरी बात सुनकर नरेन्द्र बेतरह बिगड़ा। वह क्रोध में उन्मत्त होकर रमेश को मारने पर उतारू हुआ। इस पर रमेश भी उठ खड़ा हुआ। क्रुद्ध, अतएव ज्ञानशून्य नरेन्द्र ने एकाएक रमेश को ज़ोर से धक्का देकर पानी में गिरा दिया। "बाबू पानी में गिर पड़े, पानी में गिर पड़े" कहकर मल्लाह चिल्लाने लगा। एक आदमी झट पानी में कूद-कर रमेश को खींचकर नाव पर ले आया। उस समय रमेश बेहोश हो गया था।

कुछ रात बीतते बीतते जब रमेश और नरेन्द्र घर पहुँचे तब नवकुमार ने नरेन्द्र को बुलाकर ख़ूब फटकार बताई और डाँट कर कहा—तुमने आज वह काम किया जो एक मूर्ख भी नहीं करता। क्या तुमने रमेश को गंगा की धार में ढकेलकर आज भारी अनर्थ नहीं किया? वहाँ मल्लाह न रहता तो आज वह डूब न मरता?

क्रोधशील निर्बोध नरेन्द्र ने कहा—वह मेरे साथ कलह करने क्यों आया?

नवकुमार—छि: छि:! रमेश के साथ झगड़ा करते तुम्हें लज्जा नहीं आती? क्या तुम्हें ख़बर नहीं कि तुम कौन हो, और रमेश कौन है? क्या तुम रमेश की बराबरी करते हो?

नरेन्द्र क्रोध से काँपता हुआ बोला—हम रमेश की बराबरी क्यों करेंगे। रमेश रमेश ही है, हम हमीं हैं। कौन नहीं जानता कि हम ज़मींदार वीरेन्द्रसिंह के पुत्र हैं? रमेश एक दरिद्र का बालक है, दूसरे के अन्न से पला है, भला हम और वह बराबर कैसे हो सकते हैं?

नवकुमार ने नरेन्द्र के मुँह से आज तक कभी ऐसी बात नहीं

सुनी थी। इससे वह कुछ विस्मित और क्रुद्ध होकर बोला—जानते हो, किसके साथ बात कर रहे हो ?

नरेन्द्र—हाँ, जानते हैं। जिस दरिद्र सन्तान ने हमारे पिता से पालित होकर उन्हीं को काले साँप की भाँति काट खाया और जो इस समय उनकी सारी सम्पत्ति लेकर धनाढ्य बन बैठा है उसी नवकुमार बाबू से हम बातें कर रहे हैं।

नवकुमार घड़ी भर तक कुछ न बोला। मारे क्रोध के उसका कण्ठ रुद्ध हो गया था। वह कुछ कहना चाहता था, पर मुँह से बात नहीं निकलती थी। अन्त में उसने कहा—कृतघ्न कहीं के, तेरे पिता ने बेवकूफ़ी से अपनी ज़मींदारी को बरबाद कर डाला। मैंने तुझ असहाय बालक को इतने दिनों से पाल-पोसकर बड़ा किया उसका फल यही है ! आज रमेश को डुबोया है, कल मेरे गले पर छुरी फेरेगा। तू आज ही मेरे घर से निकल जा।

नरेन्द्र—बहुत अच्छा, मैं अभी जाता हूँ। किन्तु तुम इस जन्म में या दूसरे जन्म में अपने किये का फल ज़रूर भोगोगे।

यह कहकर नरेन्द्र गङ्गाकिनारे आया। वहाँ आकर उसने देखा, हेमलता अकेली घूम रही है और बीच बीच में खड़ी होकर मन ही मन न मालूम क्या सोचती है। आज जो जो घटना हुई थी, वह सब सुन चुकी है। हेमलता को देखकर नरेन्द्र ज़रा ठहर गया। उसने देखा, हेम आँखों पर कपड़ा लगाये रो रही है, और आँसुओं से अपने आँचल को भिगो रही है।

हेम की यह दशा देख नरेन्द्र का क्रोध जाता रहा। वह झट हेम के पास आकर और उसका हाथ पकड़कर बोला—हेम, तुम क्यों रोती हो ?

हेम बड़ी अधीरता से बोली—नरेन्द्र, नरेन्द्र, मेरा हाथ छोड़ दो। रमेश को मैं अपने बड़े भाई की तरह मानती हूँ, उनको तुमने नाव पर से ढकेलकर पानी में गिरा दिया ! मेरे पिता को

को तुमने काला साँप कहा है, गालियाँ दी हैं। हम लोगों को तुम तुच्छ समझकर घृणा करते हो। मेरा हाथ छोड़ दो।

रमेश को पानी में गिरा देने पर भी क्रुद्ध नरेन्द्र को चैतन्य न हुआ। नवकुमार का कटुवचन से तिरस्कार करने पर भी उसे ज्ञान न हुआ, किन्तु अभी हेम की आँखों में आँसू देखने और उसकी चुटीली कातरोक्ति सुनने से निर्बोध नवयुवक नरेन्द्र को होश हो आया। उसने धीरे धीरे हेम के आँसू पोंछकर और अपने दोनों हाथों से उसका हाथ थामकर गिड़गिड़ाते हुए कहा—हेम, क्षमा करो, मुझसे अपराध हुआ, सचमुच आज मैंने बड़ी भूल की। रमेश का कुछ दोष न था, मैंने उजड्ड की तरह बिना कुछ सोचे समझे उन्हें ढकेलकर पानी में गिरा दिया। मुझसे यह बेशक मूर्खता का काम हुआ। तुम्हारे पिता को गाली देकर मैंने चाण्डाल का काम किया है। क्रोधी व्यक्ति में और चाण्डाल में क्या भेद है? क्रोधी आदमी तो चाण्डाल से भी बढ़कर निन्दित काम कर बैठते हैं। किन्तु हेम, अब मेरा अपराध क्षमा करो। संसार में तुम्हारे सिवा कोई ऐसा नहीं है जो स्नेह पूर्वक दो-एक मीठी बातें मुझसे कहे। मैं आज इस देश को छोड़ता हूँ। किन्तु देशत्याग के पहले तुम्हारे मुँह से स्नेह भरी दो-एक बातें सुना चाहता हूँ। हेम, अब मुझे क्षमा करो। एक बार दया-दृष्टि से मेरी ओर देखो।

हेम का हृदय द्रवित हुआ। नरेन्द्र के दोषों को भूलकर उसने उसे गङ्गा के किनारे बालू पर बैठाया और आप भी उसके पास बैठी। वह अपनी आँखों के आँसू पोंछकर कहने लगी—नरेन्द्र, तुम क्यों देशत्याग करोगे? हम लोगों को छोड़कर तुम कहाँ जाओगे? यदि पिता ने क्रोध करके कुछ कह दिया तो कहने दो, इसके लिए तुम वीरनगर क्यों छोड़ोगे? मैं अपने पिता से, हाथ जोड़कर, तुम्हारे अपराध की क्षमा के हेतु प्रार्थना

करूँगी और उनके क्रोध को शान्त करूँगी। नरेन्द्र, तुम वीर-नगर छोड़कर कहीं मत जाओ।

हेमलता का यह अनुनय व्यर्थ हुआ। उद्धत नरेन्द्र ने हेमलता की आँखों में आँसू देखकर क्षमा के लिए प्रार्थना तो की, किन्तु उसके हृदय में जो आज चोट लगी है उसकी शांति का कोई उपाय नहीं। नरेन्द्र ने कहा—हेमलता, तुम रहने के लिए मुझसे व्यर्थ अनुरोध करती हो। वीरनगर में अब मेरे ठहरने को जगह नहीं। मैंने जो कितने ही दिनों से, कई वर्षों से, पिता के इस विशाल भवन में यातना सही है, वह तुम नहीं समझ सकोगी। उस असह्य यातना को केवल तुम्हारा मुँह देखकर ही मैंने इतने दिन सहा है। जिस देश में हमारे प्रातःस्मरणीय पिता राजा थे, उस देश में मैंने दूसरे का आश्रित होकर, अपनी मान-मर्यादा गँवाकर दूसरे के द्वारा प्रतिपालित होकर, जीवन का इतना अंश बिताया है;—यह केवल तुम्हारे ही स्नेह के कारण। मैं जो इतने दिन तक इतना अपमान सहकर यहाँ था, वह केवल तुम्हारे ही स्नेह की आशा से। सो वह आशा भी आज निर्मूल हुई। आशा थी, तुम्हारे पिता मेरे साथ तुम्हारा ब्याह करेंगे। मेरी इस बात से तुम क्रोध न करो और न लज्जा ही करो। यह लज्जा या क्रोध करने का अवसर नहीं है। मैं तुम्हारे पिता के जी की बात समझ गया। विनयी रमेश को वे हृदय से चाहते हैं। मैं उनकी आँखों का शूल हो रहा हूँ। मुझको अब वे देखना नहीं चाहते। वे रमेश को कन्या देंगे। क्या मैं यही देखने के लिए यहाँ रहूँगा? मैं अपनी आँखों यह कैसे देख सकूँगा? हेमलता, मनुष्य इस आघात को कभी नहीं सह सकता। यह सहिष्णुता ऋषि-मुनियों के सिवा साधारण मनुष्यों में नहीं पाई जाती। मैं ऋषि नहीं हूँ। हेम, तुम मुझे जाने से न रोको; तुम ख़ुशी से मुझे जाने दो। वीरनगर में मेरे लिए अब जगह नहीं है।

कुछ देर तक दोनों चुप रहे। नरेन्द्र ने फिर धीरतापूर्वक कहा—हेमलता, रोओ मत; रोने के लिए सारी जिन्दगी पड़ी है। एक बार मेरी बात सुनो, मैं जन्म भर के लिए आज तुमसे बिदा होने आया हूँ। कहाँ जाऊँगा, क्या करूँगा,—यह मैं नहीं जानता। संसार में लाखों क्या करोड़ों जीव पड़े हैं। मुझे भी कहीं रहने को जगह मिल जायगी। किन्तु इस जनाकीर्ण संसार में आज से मैं अकेला हुआ। जिस देश में जाऊँगा, जहाँ जाऊँगा, वहीं घनेरे लोग मिलेंगे। किन्तु उन लोगों के बीच एक मैं ही बन्धु-बान्धव-विहीन, गृहहीन, दीन होकर रहूँगा। इस संसार में कोई ऐसा नहीं जो नरेन्द्र को अपना समझेगा या नरेन्द्र के लिए दो बूँद आँसू गिरावेगा।

हेमलता चुपचाप आँसू की धार बहा रही थी। अब उससे न रहा गया। वह जोर से रो उठी। नरेन्द्र की आँखों में आँसू न थे। पर हेम का वियोग उसके हृदय को अभी से मसोस रहा था। वह फिर धीरे धीरे कहने लगा—हेम, ज़रा ठहर जाओ, कुछ देर के लिए रोना बन्द करो, मैं नहीं रोता, पर मेरा दिल तुम्हारे लिए रो रहा है। मेरे मन में इस समय जो मर्मान्तक कष्ट हो रहा है, वह रोने से कहाँ तक प्रकट हो सकता है। हेम, तुम्हीं एक मुझे प्यार करती हो। तुम्हीं एक स्नेह की दृष्टि से मुझे देखती हो। तुम्हारे ही हृदय में मेरे सुख-दुःख की भावना रहती है। किन्तु नरेन्द्र तुमको कितना चाहता है, तुम पर नरेन्द्र का कितना गाढ़ प्रेम है—यह तुम नहीं जानतीं। तुम अभी बालिका हो। तुम्हारे हृदय में अभी उस अपूर्व भाव का अनुभव नहीं हो सकता। किन्तु अब वह स्वप्न दूर हुआ। जीवन का एक-मात्र आशाप्रदीप आज बुझ गया। आज से नरेन्द्र को चारों ओर अँधेरा ही अँधेरा सूझता है। इस अँधेरे में नरेन्द्र जब तक जीवित रहेगा, देश-देश, जंगल-जंगल भटकता फिरेगा।

इतना कहकर नरेन्द्र चुप हो रहा; कुछ ठहरकर फिर धीरे

धीरे बोला,—हेमलता, तुमसे एक बात और कहनी है। लड़कपन में हम-तुम दोनों ने मिलकर यह माधवीलता लगाई थी। हम लोगों के स्नेह की भाँति यह लता भी बढ़ गई है। अब इसके रहने की क्या आवश्यकता ?

नरेन्द्र ने उस लता को उखाड़ लिया और उसका एक कङ्कण (कँगना) बनाया। वह कङ्कण धीरे धीरे हेमलता के हाथ में पहनाकर कहा—हेम, जितना जल्द फूल सूखता है उतना जल्द लता नहीं सूखती। तुम भी कुछ दिनों तक मेरा स्मरण रक्खोगी, आशा तो ऐसी ही है। जब तक मुझ पर तुम्हारा स्नेह रहे उतने दिम तक तुम इस माधवीलतानिर्मित कङ्कण को रक्खे रहना। जब इस अभागे की सुधि हृदय से जाती रहे, जब इस भाग्यहीन को एक-दम भूल जाओ तब इस सूखी लता को नदी के जल में फेंक देना।

शोक से अकुलाती हुई हेमलता ने, विस्मित होकर, बड़ी अधीरता से नरेन्द्र की ओर देखा। वह चित्रवत् खड़ा था। उसका स्वर ज़रा भी कम्पित न हुआ था। उसकी आँखों में आँसू न थे। किन्तु उसकी आँखों से आग की चिनगारियाँ निकल रही थीं। नरेन्द्र धीरे धीरे हेम का हाथ छोड़कर चला गया। उस अँधेरी रात में वह किधर गया, यह किसी ने नहीं देखा।

छठा परिच्छेद

एकाकिनी बालिका

सन्ध्या बीत चली। चारों ओर अँधेरा छा गया है। अब भी तेरह वर्ष की एक बालिका गङ्गा-किनारे बैठी है, और स्थिर दृष्टि से गङ्गा की तरङ्ग की ओर देख रही है। वह टकटकी बाँधे इस तरह तरङ्ग की ओर क्यों निहार रही है? ज़रूर उसके मन में कोई चिन्ता है। चिन्ता कुछ साधारण नहीं है। यह प्रज्वलित चिन्ताग्नि हेम के हृदय को बेतरह जला रही है। उसका कलेजा फट रहा है। देखते देखते उसकी आँखों में आँसू भर आये। यद्यपि उसे अब कुछ नहीं सूझता तथापि वह उसी तरह ताक रही है।

बहुत देर बाद हेम का जी ठिकाने आया। वह धीरे धीरे वहाँ से उठकर घर आई। नवकुमार के घर के सभी लोग खा-पीकर सो रहे थे। हेम को आज भूख-प्यास काहे को होगी। नींद का तो नाम ही न लीजिए। आज की रात उसके लिए कैसी भयानक थी, यह उसी का जी जानता था। हेम धीरे धीरे पलँग से उठकर झरोखे के निकट आई। झिलमिली खोलकर उसने बाहरी दृश्य पर दृष्टि डाली। देखा, ऊपर आकाश में तारागण जगमगा रहे हैं। नीचे कलकल शब्द करता हुआ गङ्गा का प्रवाह पश्चिम से पूरब की ओर जा रहा है। इसके सिवा उस अँधेरी रात में और कुछ न देख पड़ा। वह गङ्गा के प्रवाह की ओर टकटकी बाँधकर देखने लगी। उसके मन में एक एक कर सभी बातों का स्मरण होने लगा। जो बात वह एक-दम भूल गई थी, जो बात कभी स्वप्न में दृग्गोचर तक नहीं होती थी

सो सब इस समय उसकी आँखों के सामने नाचने लगी। बाल्यकाल के खेल, बात बात में साथियों से अनबन और फिर तुरन्त उनसे सलाह; किशोर अवस्था के नये नये भाव, नवीन प्रेम का उदय, नई चिन्ता, ऐसी ही अनेक बातें आज उसके कोमल हृदय पर आघात पहुँचाने लगीं। एक एक बात पर आज वह हज़ार हज़ार आँसू गिरा रही है। इस समय उसके पास उसकी आँखों के आँसू पोंछने वाला कोई नहीं। वह आपही रोती है, आपही धैर्य धारण करती है। रोते रोते जब उसका जी भर जाता है तब वह फिर एक बार गङ्गा की ओर देखती है। फिर कोई बात याद आ जाने पर रोने लगती है। इसी तरह रोते रोते वह थक गई। फिर भी उसका रोना बन्द न हुआ। रात एक पहर बीती, दूसरा पहर भी बीता, यों ही पहर पर पहर बीतने लगा पर हेम को इसकी कुछ ख़बर नहीं। वह रो रोकर उसी तरह अपनी आँखें फोड़ रही थी। कभी झरोखे के पास खड़ी होती है, कभी बैठती है और कभी धरती पर लेटती है, पर चुपचाप रोती ज़रूर है।

शोक का पहला वेग शान्त हुआ। किन्तु वह एकबारगी निवृत्त होने का नहीं। हेमलता गाल पर हाथ रक्खे, गवाक्ष के पास बैठकर फिर सोचने लगी। फिर उसकी आँखों में आँसू भर आये। वह आँसू रोकने की चेष्टा करती है, पर उन्हें रोक नहीं सकती। आँसू पोंछते पोंछते उसका सारा कपड़ा भीग गया, फिर भी उसकी आँखें आँसुओं से ख़ाली नहीं हैं। रात बीत चली। प्रभातकाल का प्रकाश आकाश में छा गया। धीरे धीरे पूरब ओर लालिमा दिखाई देने लगी। किन्तु वह बालिका अब भी गाल पर हाथ रक्खे उसी तरह झरोखे के पास बैठी है। अब भी उसी तरह उधेड़बुन में लगी है। अब भी उसके मन में चिन्ता का तार बँधा हुआ है। इस चिन्ता का तार कब टूटेगा, कौन कह सकता है ?

सबेरा हो गया, सूर्य का प्रकाश देख हेम एक बार अचम्भे में आ गई। वह अभी रात ही समझे बैठी थी। एकाएक सूर्य की प्रभा देखकर वह चकित हो उठी। रोते रोते उसकी आँखें सूज गई थीं। रात भर जागते रहने के कारण उसका शरीर शिथिल हो रहा था। चिन्ता से मुँह पर एक अजब तरह की उदासी छाई हुई थी। हेम धीरे धीरे वहाँ से उठकर नीचे उतर आई और चुपचाप घर के कामों में लगी। आज घर के कामों में उसका जी क्यों नहीं लगता? आज उसे और लोगों के रहते घर सूना-सा क्यों प्रतीत होता है?

यों ही प्रतिदिन हेम झरोखे के पास जा बैठती, और गङ्गा जी के प्रवाह की ओर निहारा करती। क्या सबेरे, क्या साँझ, क्या दोपहर को और क्या आधी रात के समय जभी उसके जी में आता, जभी वह अवकाश पाती, झरोखे पर बैठकर गङ्गा का प्रवाह देखती और अपने सन्तप्त हृदय को कुछ देर के लिए ठंडा किया करती। वहाँ बैठकर वह क्या क्या सोचती, कितनी बातें उसके मन में उदित होती थीं, यह कौन जान सकता है? एक दिन नरेन्द्र ने उसके कान में क्या कहा था, एक दिन वह गङ्गा के उस पार से हेम के लिए क्या लाया था, एक दिन नरेन्द्र और हेम ने पेड़ से आम तोड़कर छिपकर खाये थे। एक दिन हेम पिता से बिना आज्ञा लिये नरेन्द्र के साथ चुपचाप सन्ध्या समय नाव पर चढ़ी थी। एक दिन हेम ने अपने हाथ से फूलों की माला गूँथकर नरेन्द्र के गले में पहना दी थी। एक दिन नरेन्द्र ने हेम की चिकुर-राशि को फूलों से सजा दिया था।—इस तरह की सैकड़ों बातें एक साथ, नदी की तरङ्ग की भाँति, हेम के हृदय में उठती थीं और विलीन होती थीं। यों ही एकान्त में बैठकर कभी दोपहर से सन्ध्याकाल पर्यन्त, और कभी सन्ध्या से आधी रात तक हेमलता चुपचाप सोचती थी।

बीच बीच में कई बार उसकी आँखों में आँसू उमड़ आते थे, पर कोई देख न ले, इस भय से वह झट उन्हें पोंछ डालती थी। जिस दुःख से हेम दुखी थी, जिस सोच से उसका शरीर दिन दिन गला जाता था, उस दुःख या सोच का भागी नवकुमार के घर में दूसरा कोई न था। हेम अपने मन की बात किसी से नहीं कहती। वह कहती ही किससे ? वह केवल छिपकर मन ही मन सोचना और रोना जानती थी। घर के लोगों से दूर हटकर वह चुपचाप सोचा करती थी। कभी कभी शोक का समुद्र उमड़ पड़ने से वह मन के भाव को छिपा नहीं सकती थी। उसकी आँखों से आँसुओं की धारा वह चलती थी।

क्रमशः वसन्त का अन्त लगा। ग्रीष्म का आगमन हुआ। प्रकृति की शोभा वङ्गदेश में चारों ओर फैल गई। भाँति भाँति के फल-फूल चित्त को मोहने लगे, पक्षियों के कलरव से वन-उपवन भर गये। नवपल्लवित वृक्ष पवन के साथ अठखेलियाँ करने लगे। एक डाल से दूसरी डाल पर उमङ्ग से भरे हुए पक्षियों का चहचहाना चित्त में एक अपूर्व आनन्द उत्पन्न करने लगा। सूर्य की प्रखर किरणों से उत्तप्त होकर पथिकगण पेड़-पेड़ के नीचे विश्राम लेने लगे। दोपहर को हेमलता उपवाटिका में जा पेड़ की छाया में बैठकर चुपचाप पक्षियों का गान सुनती और गाल पर हाथ रखकर मन ही मन सोचती थी। जब तक सायंकाल के गाढ़े अन्धकार में पेड़ छिप न जाते थे तब तक वह उसी तरह चिन्ता में डूबी रहती थी।

धीरे धीरे ग्रीष्म भी बीत गया। वर्षा ऋतु आई। काले बादलों ने सारे आकाश-मण्डल को ढक लिया। बिजली की चकाचौंध से लोगों की आँखें छिपने लगीं। वर्षा की झड़ी लग गई। नदी-नाले भर गये। किन्तु हेम का निरानन्द हृदय सूखा का सूखा ही रहा।

वर्षा बीत चली। शरद् का सुहावना समय आया। शारदी पूजा की चारों ओर धूम मच गई। सभी लोग दशहरे का उत्सव मनाने लगे। सरोवर के स्वच्छ जल में प्रफुल्ल कमलवन की शोभा दर्शकों के हृदय को लुभाने लगी। निर्मल आकाश में चन्द्रमा की छटा देख किसका चित्त प्रसन्न न होता था? परन्तु हेम का हृदय-रूपी आकाश अब भी अन्धकार से भरा है। अब भी उसके चेहरे पर प्रसन्नता का चिह्न दिखाई नहीं देता।

यों ही हेमन्त, शिशिर भी बीता, पर हेम का उत्ताप वैसा ही बना रहा। उसके हृदय की शोकाग्नि जलती ही रही। उसके मन की चिन्ता ज्यों की त्यों बनी ही रही।

नवकुमार के इतने बड़े साम्राज्य में सभी लोग सुखी हैं। न किसी के मन में कुछ क्षोभ है, न किसी को किसी बात की कमी है और न कुछ दुःख है। किन्तु नवकुमार के परिवार में एक-मात्र उसकी स्नेह-पालिता बालिका विषण्ण है, शोकाकुल है और सोच से दिन दिन दुबली होती जाती है। उसके परिवार में उतने लोगों के रहते भी हेमलता एकाकिनी है।

सातवाँ परिच्छेद

संसार में एकाकी

नरेन्द्र तैरने में अत्यन्त कुशल था। वह उसी रात में तैरकर गङ्गा के उस पार चला गया। सामने उसने दूर तक बालू का ढेर देखा। उसके आगे उसे मैदान के सिवा और कुछ न देख पड़ा। नरेन्द्र उस अँधेरी रात में भीगा-भागा और गीले वस्त्र पहने उस तीरवर्ती बालू पर टहलने लगा।

नरेन्द्र ने गङ्गा के उस पार को ध्यान से देखा। आधी रात को उस घोर अन्धकार में भी वीरनगर की श्वेत अट्टालिका कुछ कुछ दिखाई दे रही है। नरेन्द्र उसी अट्टालिका की ओर देर तक देखता रहा। निस्तब्ध रात में केवल गङ्गा का कलकल शब्द सुन पड़ता है और बीच बीच में उल्लू का भीषण शब्द सुनाई देता है। कुछ दूरी पर रह रह-कर शृगाल बोल उठता है। नरेन्द्र का ध्यान गंगा की धार की ओर न था, और न वह उल्लू या शृगाल की बोली सुन रहा था; वह तो चुपचाप अँधेरे में टहल रहा था। बहुत देर के बाद उसने फिर एक बार वीरनगर की ओर देखा। किन्तु अन्धकार इतना घना हो गया था कि वीरनगर अब ज़रा भी नहीं देख पड़ा। नरेन्द्र एक लम्बी साँस लेकर वहाँ से बिदा हुआ। सामने जो रास्ता मिल गया उसी के सहारे आगे बढ़ा।

नरेन्द्र कहाँ जा रहा है, उसे मालूम नहीं। वह केवल आँख मूँदे, रास्ता पकड़े, आगे की ओर जा रहा है। ऊपर असीम आकाश है और नीचे है बहुत विस्तृत मैदान। नरेन्द्र की चिन्ता भी असीम है। वह चिन्ता में मग्न होकर अपने को

भूला हुआ है। कहाँ उसका पाँव पड़ता है, किधर जा रहा है, इसका उसे कुछ भी ख़याल नहीं। सड़क के पार्श्ववर्ती बरगद के पेड़ के पास नरेन्द्र को आते देख कितने ही रात्रिञ्चर पक्षी अपने अपने घोसलों को छोड़ आकाश में उड़ने लगे। दूर से कुत्तों के भूँकने की आवाज़ आ रही थी, किन्तु इन बातों से नरेन्द्र का क्या सम्बन्ध। उसका ध्यान तो किसी और ही तरफ़ था।

यों ही जाते जाते बहुत दूर पर उसे एक गाँव मिला। गाँव के सभी लोग सो रहे थे। वृक्षों से घिरे हुए छोटे छोटे घर देख पड़ते थे। उन वृक्षों पर कहीं कहीं जुगनू की ज्योति जगमगा रही थी। नरेन्द्र को देखकर गाँव के कुत्ते भूँकने लगे। दो-एक गृहस्थों ने दर्वाज़ा खोलकर देखा, पर नरेन्द्र अपना रास्ता पकड़े चला जा रहा था। उसने किसी तरफ ध्यान न दिया। गाँव का रास्ता ठीक ठीक न जानने के कारण वह कई बार ऊँची-नीची भूमि में ठोकर खाकर गिरा, कई जगह झाड़ियों में उलझ जाने से उसका बदन छिल गया और बबूल के जङ्गल के भीतर से होकर जाने में तो उसकी बड़ी ही दुर्गति हुई। काँटों से उसका सारा अङ्ग क्षत-विक्षत हो गया। पर इन सारी आपदाओं को नरेन्द्र ने अपने जी में कुछ न गिना। इस प्रकार अँधेरे में भाँति भाँति के कष्टों को सहता हुआ वह गाँव से निकलकर एक मैदान में आ पहुँचा।

धीरे धीरे नरेन्द्र उस मैदान को भी पार कर एक दूसरे गाँव में आया। चुपचाप उस गाँव से भी निकलकर वह आगे बढ़ा। इसी तरह नरेन्द्र उस रात में कई एक गाँवों को लाँघता हुआ आगे की ओर बढ़ता ही गया। रास्ते में उसे कितने गाँव मिले, उनकी तादाद कौन बतला सकता है? ख़ुद नरेन्द्र भी नहीं कह सकता।

सारी रात यों ही चलते चलते नरेन्द्र ने सामने एक बहुत

बड़ा मैदान देखा। मैदान में एक जगह आग जल रही थी। नरेन्द्र अब उस आग के प्रकाश की तरफ़ बढ़ चला। प्रायः दो मील चलकर उसने धधकती हुई आग के पास पहुँची कर देखा कि कुछ लोग एकत्र होकर मुरदा जला रहे हैं। नरेन्द्रनाथ ठिठककर खड़ा हो रहा। वह स्थिर होकर शव-दाह देखने लगा। लकड़ी एक बार खूब ज़ोर से धधक उठती थी, फिर तुरन्त निस्तेज हो जाती थी। उस न्यूनाधिक प्रकाश में नरेन्द्र का लम्बा आकार और सूखा-सा मुख लोगों को दिखाई देने लगा। जो लोग मुर्दा जलाने आये थे उन्होंने वहाँ से कुछ दूर पर नरेन्द्र को खड़ा देख, उसे एक थका हुआ पथिक जानकर पास आने को कहा। किन्तु नरेन्द्र उनके पास न आया। तब उन लोगों ने हारकर दूर से परिचय पूछा, पर नरेन्द्र ने इसका भी कुछ उत्तर न दिया। वे लोग कुछ देर नरेन्द्र का विशाल शरीर और भयानक चेहरा देखकर डर गये और सबके सब उसको भूत समझकर वहाँ से भाग चले।

बड़े तड़के गाँव की स्त्रियाँ बग़ल में घड़ा दाबकर जल भरने के लिए गङ्गातट जा रही थीं। वे सड़क पर एक लम्बे से गोरे मनुष्य को हाथ-पाँव फैलाये सोया हुआ देखकर डर गईं और चुपचाप सड़क के एक किनारे हटकर दबे पैर चली गईं।

सबेरा हुआ। बात की बात में एक अपरिचित युवा के सड़क पर सोये रहने की बात गाँव भर में फैल गई। गाँव के क्या छोटे क्या बड़े सभी लोग चकित होकर उसे देखने गये। वह नींद में अचेत पड़ा सो रहा था। लोगों ने उसे जगाकर परिचय पूछा। उसने उत्तर दिया—"न मेरा नाम है; न कहीं धाम है; इसी तरह भटकना ही मेरा काम है। मैं इस संसार में अकेला हूँ।" नरेन्द्र घोर पागल हो गया।

आठवाँ परिच्छेद

राजमहल

नरेन्द्र उसी दिन बीमार हुआ। गाँव के एक सज्जन ने उसकी सेवा-शुश्रूषा और दवा-पानी का प्रबन्ध कर दिया। किन्तु बीमारी सख्त हो जाने के कारण बहुत दिनों तक उसके जीने की आशा न थी। पर अच्छी चिकित्सा हो जाने से वह धीरे धीरे आरोग्य होने लगा। जब उसके शरीर में चलने-फिरने की शक्ति हुई तब नरेन्द्र उस सज्जन को अनेकानेक धन्यवाद दे वहाँ से चल दिया।

नरेन्द्र के मन में जो प्रथम शोक का उच्छ्वास और नैराश्य-जनित चिन्ता की तरङ्ग थी वह क्रमशः ठंडी पड़ गई। अब वह हेमलता के पाने की युक्ति ढूँढ़ने लगा। अन्त में उसने यह सोचा कि पहले सूबेदार के पास जाना चाहिए। और उससे अपनी ज़मींदारी पाने के लिए प्रार्थना करनी चाहिए। जब पैतृक सम्पत्ति मुझे मिल जायगी तब स्वार्थपरायण नवकुमार अवश्य ही अपनी लड़की का ब्याह मेरे साथ कर देगा।

इसी काम के लिए नरेन्द्र सूबेदार शुजा की राजधानी में जा पहुँचा। इस जगह शुजा का कुछ परिचय दे देना हम उचित समझते हैं। शुजा दिल्ली के बादशाह शाहजहाँ के पुत्र थे। वे वङ्गदेश के सूबेदार नियुक्त होकर आये थे। उन्होंने अपनी राज-धानी ढाके से उठाकर राजमहल में स्थापित की और बीस वर्ष तक बड़ी योग्यता से देश-शासन का कार्य किया। उनके

शासनकाल में सर्वत्र शान्ति छाई थी। कहीं किसी तरह का युद्ध या उपद्रव न था। प्रजा सुख-चैन से समय बिताती थी। इतिहास में शुजा की बहुत कुछ प्रशंसा पाई जाती है। वे युद्ध में जैसे पराक्रमी और साहसी थे वैसे ही प्रजावत्सल, न्यायी और दयालु थे। उनकी दयालुता और न्यायपरता से क्या जमींदार, क्या जागीरदार, क्या कंगाल सभी ख़ुश रहते थे और सभी उनको हृदय से चाहते थे। सुनते हैं, उनकी मृत्यु के समय बङ्गदेश के आबाल-वृद्ध सभी ने इनके लिए खेद प्रकट किया था। किन्तु उनका स्वभाव इतना अच्छा होने पर भी दो-एक दोषों से कलङ्कित था। युद्ध में वे जैसे ही धीर वीर थे वैसे ही अन्य समय में विलासी भी थ। शुजा देखने में अत्यन्त सुन्दर थे, और उनकी सुन्दरता ही उनके विषय-परायण होने का कारण हुई। वे हमेशा, नाज-नख़रों से भरी हुई, नई नई यौवन-मदमाती नाज़नियों के बीच रहना बहुत पसन्द करते थे। इससे ललनायें बराबर उन्हें घेरे रहती थीं। उनकी प्रधान बेगम प्यारीबानू रूप, गुण और चतुराई में एक ही थी। बङ्गदेश में उसका बड़ा नाम था। वह अपनी मीठी बातों और हास-विलास से सूबेदार के दिल को हमेशा अपनी मुट्ठी में लिये रहती थी और उनके हृदय को प्रेम-रस से आप्लावित किये रहती थी। किन्तु इससे यह न समझना कि शुजा की केवल वही एक-मात्र प्रणयभागिनी थी। प्यारीबानू के सदृश सैकड़ों बेगमें उद्यान के फूलों की भाँति, शुजा के राजमन्दिर को सुशोभित किये रहती थीं। उन रमणियों के रूप से विमोहित होकर शुजा राजकाज भूल जाते थे। कभी कभी मद्यपान करके दो-दो, तीन-तीन दिन तक उन रमणियों के साथ आमोद-प्रमोद में ही डूबे रहते थे।

सूबेदार के यहाँ नरेन्द्रनाथ कुछ निवेदन करने के अभिप्राय से गया तो सही, पर ऐसे विलासप्रिय सूबेदार से उचित विचार की प्रत्याशा करना वृथा है।

गङ्गा के किनारे सुन्दर राजमहल अब भी रौनक़दार है, किन्तु जिस समय वह वङ्गदेश की राजधानी था उस समय उसकी शोभा ही कुछ और थी। सूबेदार के गगनस्पर्शी उच्च प्रासाद, राजपरिवार के रहने के सुविशाल भवन, अमीरों और जागीरदारों के दर्शनीय पँचखने सतखने महलों, बड़े बड़े सेठ-महाजनों की कोठियों से तथा धनाढ्य लोगों के नित्यप्रति के समागम से राजमहल यथार्थ ही में राजमहल था। स्वयं गंगा जी हज़ारों व्यवसायियों के हज़ारों जहाज़ों को अपने स्वच्छ जलमय गम्भीर हृदय पर धारण करके नगर की शोभा और समृद्धि को बढ़ा रही थीं। नगर के भीतर कितने ही आम-बाग़, और कितनी ही पुष्प-वाटिकायें थीं, जिनकी ओर एक बार दृष्टि करने से फिर दूसरी ओर दृष्टि फेरने को जी नहीं चाहता था। अत्यन्त रमणीय राजपथ पर दिन-रात सैन्यगण, मुसलमान सेनापति, ज़मींदार और कितने ही रईस लोग— कोई घोड़े पर, कोई हाथी पर, कोई पालकी पर और कोई पैदल ही—आते-जाते थे। सड़क पर बराबर लोगों की भीड़ लगी ही रहती थी। व्यवसायिगण दिन-रात अपने व्यवसाय में उलझे रहते थे। कहने का मतलब यह कि राजमहल उस समय बड़ी तरक्क़ी पर था।

तो क्या नरेन्द्र शहर की शोभा देखने के लिए गया था? नहीं। नरेन्द्र को शहर की सजावट से कोई मतलब न था। वह उपाय सोचने लगा कि सूबेदार के निकट किस तरह अपने मन के भाव को प्रकट करूँगा। कितने ही हिन्दू धनाढ्य व्यवसायी नरेन्द्र के पिता को जानते थे। किन्तु नरेन्द्र अभी दरिद्र है, दरिद्र के लिए कौन यत्न करता है? नरेन्द्र जिस जिसके पास गया, सबने यही कहा—"हाँ बाबू, तुम्हारे पिता को हम जानते हैं, वे बड़े नामी थे, उनके पुत्र को देखकर हम बहुत प्रसन्न हुए। कुछ दिन तुम यहाँ ठहरो, पीछे देखा जायगा।" वह जहाँ

जहाँ गया, सर्वत्र इसी तरह की बात उसके सुनने में आई। नरेन्द्र क्या करता? विफल-प्रयत्न होकर कुछ दिन के लिए वहीं ठहर गया। कुछ दिनों के बाद संयोगवश हर्फ़नख़ाँ नामक एक मुग़ल जागीरदार से नरेन्द्र की भेंट हुई। हर्फ़नख़ाँ वीरेन्द्र का सच्चा दोस्त और यथार्थ में एक उपकारी व्यक्ति था। उसने नरेन्द्र का पूर्णरूप से सत्कार किया और उसके काम के लिए शीघ्र सूबेदार के पास जाने की प्रतिज्ञा की। फिर भी दरिद्र नरेन्द्र की इत्तिला सूबेदार के विचारासन तक पहुँचनी कठिन थी। अनेक युक्ति-कौशल से बहुत दिनों पर हर्फ़नख़ाँ ने भाँति भाँति के बहुमूल्य उपहार से सूबेदार और उसके मन्त्रियों के मन को प्रसन्न करके नरेन्द्र की इत्तिला शुजा के सामने पेश की।

रत्नजटित सिंहासन पर सूबेदार बैठे हैं। एक तो उनका स्वरूप आप ही सुन्दर है। उस पर राजसी लिवास से उनका सौन्दर्य्य और भी बढ़ रहा है। उनके चारों ओर मन्त्री, बड़े बड़े ओहदेदार, अफ़ग़ान और मुग़ल सैन्यगण, सिर नीचा किये अदब से खड़े हैं। अन्यान्य कितने ही लोगों से वह सविस्तृत विचारालय भरा हुआ है। सिंहासन के दोनों ओर दो परिचारक चँवर डुला रहे हैं। न्यायालय के बाहर लोगों की अपार भीड़ लगी है। सूबेदार न्यायालय में कभी कभी आते थे। इस कारण आज सभी लोग उनके दर्शनार्थ आये हैं।

सूबेदार के सामने वृद्ध हर्फ़नख़ाँ ने खड़े होकर और हाथ जोड़कर निवेदन किया—जहाँपनाह, इस तावेदार ने क़रीब बीस बरस से हुज़ूर की ख़िदमत में रहकर काम किया है। हुज़ूर के कामों में इस तावेदार की दाढ़ी-मूँछ सफ़ेद हो गई। आज तक तावेदार ने भूलकर भी कोई गुनाह नहीं किया और न किसी युद्ध में आज तक पीठ दिखाई है। तावेदार कुछ अर्ज़ करना चाहता है।

शुजा—हर्फ़न, तुम हमारे प्रधान सेवकों में हो। तुमको हम हृदय से चाहते हैं। तुम्हें जो कुछ कहना हो कहो। तुम्हारा कौन काम ऐसा होगा जिसे हम पूरा न कर सकेंगे ?

हर्फ़न ने लम्बा सलाम करके फिर कहा—जहाँपनाह, वङ्ग-देश के रहनेवाले स्वभावतः दुर्बल होते हैं, तथापि उनमें कोई कोई पराक्रमी ज़मींदार हैं जो हम लोगों का युद्ध में साथ देते हैं,—सामर्थ्य भर सहायता करते हैं—वे हुज़ूर के शुभचिन्तक और प्रीतिपात्र हैं, इसमें सन्देह नहीं। ज़मींदार वीरेन्द्रसिंह वैसे ही लोगों में से हुज़ूर का एक ख़ैरख़्वाह शख़्स था।

शुजा—हाँ, मैंने उस हिन्दू का नाम सुना है। जिस समय पठानों के साथ लड़ाई छिड़ी थी, उसने युद्ध में हम लोगों की सहायता की थी।

हर्फ़नख़ाँ ने फिर तसलीम करके कहा—जहाँपनाह ने जो कुछ फ़रमाया है, बहुत ठीक है। यह ताबेदार जब उड़ीसा के युद्ध में गया था तब वहाँ वीरेन्द्र का युद्ध-कौशल और राजभक्ति अपनी आँखों देख आया था। इस राजदरबार में बड़े बड़े पराक्रमी वीर पठान और मुग़ल सैनिक हैं, किन्तु वीरेन्द्र से बढ़कर साहसी और शूर पुरुष इस ग़ुलाम ने आज तक नहीं देखा।

सभा में जितने वीरगण खड़े थे उनकी म्यान के भीतर तलवार झनझना उठी। क्या पठान, क्या मुग़ल, जितने मुसल-मान थे सबका मुँह लाल हो गया। किन्तु शुजा ने हँसकर कहा—तुमने काफ़िर की हद से ज्यादा तारीफ़ की, पर बात झूठ नहीं है। वह हिन्दू हक़ीक़त में एक दिलेर और हिम्मतवर था। हमने भी यह बात सुनी है। इस वक्त उसके बारे में क्या कहना है, कहो। तुम्हारे अनुरोध से, जो कहोगे, उसकी भलाई करने को हम तैयार हैं।

हर्फ़नख़ाँ ने गम्भीरतापूर्वक कहा—हुज़ूर क्या नहीं कर

सकते ? वीरेन्द्र की भलाई हुज़ूर के हाथ में है। इस समय हुज़ूर के सिवा दूसरे का सामर्थ्य नहीं जो उसका कुछ उपकार कर सके। मैं उसके अनाथ बालक के लिए हुज़ूर से अर्ज़ कर रहा हूँ। बालक इस समय दरवाज़े दरवाज़े भीख माँगता फिरता है। क़ानूनगो साहब की मेहरबानी से एक दुष्ट ने उसकी पैतृक ज़मींदारी हड़प कर ली है।

सूबेदार ने भौंहें टेढ़ी करके वीरेन्द्र की ज़मींदारी के विषय में आग्रह के साथ क़ानूनगो से पूछा। उस समय ख़ज़ाने और ज़मींदारी के कुल काग़ज़ात क़ानूनगो के हाथ में रहते थे। क़ानूनगो कीस त्ता उस समय यहाँ तक बढ़ी हुई थी कि बङ्गदेश के शासक जो काग़ज़ दिल्ली में बादशाह के पास भेजते थे उस पर क़ानूनगो की सही न रहने से वह नाजायज़ समझा जाता था। क़ानूनगो नवकुमार से रुपया ले चुका था। अतएव उसने विनयपूर्वक कहा—हुज़ूर से जो हुक्म होगा, उसी बमूजिब ताबेदार काम करेगा। वीरेन्द्र की मृत्यु होने के बाद कई साल तक उसकी ज़मींदारी का ख़ज़ाना हुज़ूर में न आया। तब जहाँ-पनाह ने वह ज़मींदारी नवकुमार को दे देने की आज्ञा दी थी। जब से नवकुमार को ज़मींदारी दी गई है तब से बराबर ठीक समय पर ख़ज़ाने का रुपया आता है।

शुजा इतने ही में सब बात समझ गये। क़ानूनगो ने जो कुछ उन्हें समझा दिया, उसी को उन्होंने ठीक मान लिया। हर्फ़न की प्रार्थना वहीं तक रह गई। क्रोध से उसका मस्तक झुक गया। हर्फ़न के दाहने भाग में नरेन्द्र खड़ा था। वह तीव्रदृष्टि से क़ानूनगो की तरफ़ ताक रहा था।

बङ्गाल के हाकिम शाह शुजा ने हर्फ़नख़ाँ की ओर देखकर कहा—हर्फ़नख़ाँ, देखो, सूर्य जो तेज धरती को देता है वह वापस नहीं लेता। किसी को कुछ देकर फिर छीन लेना राजधर्म नहीं है। जो ज़मींदारी ख़ुद हम एक शख़्स को दे चुके हैं वह

फिर उससे लौटा लेना राजनीति के खिलाफ़ होगा। वीरेन्द्र का बालक होनहार सा देख पड़ता है। वह वीरेन्द्र की भांति युद्ध करना सीखे, हम इसे जरूर अच्छा पुरस्कार और दूसरी जमींदारी इनाम देंगे।

दरबार में जितने लोग थे, सभी शुजा को धन्यवाद देने लगे। सभी ने शुजा के इस उदार वचन की प्रशंसा की। हर्फ़-नवी बेचारा लाचार हो उस हुक्म को माथे चढ़ाकर उसी दिन से नरेन्द्र को अपने पास रख युद्ध की शिक्षा देने लगा।

नवां परिच्छेद

काशी का युद्ध

पूर्वोक्त घटना को हुए तीन वर्ष बीत गये। सन् १६५६ ई० के आश्विन मास के शुरू में एक दिन भारतवर्ष की राजधानी दिल्ली और आगरा शहर में बड़ी हलचल मच गई। आगरे के राजमन्दिर का द्वार लोगों से भर गया। समस्त नगरनिवासी भौंचक से हो रहे। दूकानें बिलकुल बन्द हो गईं। राजधानी के जितने लोग थे,—मनसबदार, राजपूत, मुग़ल, पठान आदि—सभी चञ्चल और चिन्ताकुल हैं। सभी के चेहरे पर घबराहट और उदासी छाई हुई है। राजकाज बन्द है। बादशाह शाहजहाँ कई दिनों से रोगाक्रान्त होकर शय्यागत थे। आज ख़बर उड़ी कि वे इस दुनिया से कूच कर गये।

यह झूठी ख़बर बात की बात में सारे भारतवर्ष में फैल गई। यह ख़बर सुनकर बङ्गाल से शुजा, दक्षिण देश से औरंगज़ेब और गुजरात से मुराद सेना लेकर दिल्ली की तरफ़ दौड़े। बादशाह की मृत्यु के बाद शाही तख़्त पर बैठने के लिए सभी व्यग्र हो उठे। शाही ताज सिर पर रखने के लिए सबकी जीभ से राल टपकने लगी। पीछे से जब सच्ची ख़बर मिली कि बादशाह अभी सही सलामत हैं तब भी शाहज़ादों के मन से बादशाहत की तृष्णा न गई और न वे लोग आपस के लड़ाई-दंगे से ही बाज़ आये। कारण यह कि इसके पहले कई महीनों से बादशाह बीमारी के सबब राजकाज करने में असमर्थ हो रहे थे। उनके बड़े बेटे दारा ने इस अवसर को हाथ से न जाने दिया। सलतनत की सारी कार्रवाई उन्होंने अपने हाथ में

ले ली और वे सब राज-काज करने लगे। जो उनके जी में आता वही करते, बादशाह से किसी विषय में कुछ सलाह तक न लेते थे। उनके आचरण से ऐसा जान पड़ने लगा कि वे पिता को जन्म भर के लिए क़ैद में रखकर आप सारी सलतनत पर अपनी हुकूमत चलावेंगे। कोई कोई तो यहाँ तक सन्देह करने लग गये कि विषप्रयोग के द्वारा युवराज अपने सिंहासन के मार्ग निष्कण्टक बनावेंगे। दारा के और जितने भाई थे वे अपने पिता के शासन से राज़ी थे, किन्तु जेठे भाई के शासन को स्वीकार करने में सम्मत न थे। इसी कारण समग्र भारतवर्ष में युद्ध की आग भड़क उठी।

सन १६५७ ई० के अन्त में काशी के मैदान में भयङ्कर युद्ध हुआ। मौसम जाड़े का था। दिन भर लड़ाई होती रही, साँझ होते होते युद्ध-क्षेत्र लोथों से भर गया। ढेर के ढेर हाथी, घोड़े, ऊँट और मनुष्यों के मृत कलेवर पड़े हैं। चारों ओर लोहू की कीचड़ मच गई है जिसे देख हृदय काँप उठता है। कहीं घायल सिपाही कराह रहे हैं। कहीं कोई सैनिक मरणासन्न होकर क्षीण स्वर से पानी, पानी की रट लगा रहे हैं। कहीं दो एक योद्धा इधर-उधर घूमते हुए दिखाई दे रहे हैं। वे प्रायः अपने भाई और मित्रगणों की लाश का अनुसन्धान कर रहे हैं। उन अनगिनित मुर्दों में परिचित व्यक्ति की लाश का पता लगाना सहज काम नहीं है। यह जानकर भी वे लोग मोहवश अपने प्यारे भाई-बन्धुओं को खोज रहे हैं। पर वे अब इस संसार में कहाँ मिलेंगे? दो एक चोट्टे बहुमूल्य वस्त्र, भूषण और हथियार आदि की खोज में इधर-उधर चक्कर काट रहे हैं। झुण्ड के झुण्ड शृगाल चीत्कार करते हुए रणभूमि की ओर आ रहे हैं। कहीं कहीं आग जलते देख पड़ती है। उसके प्रकाश में युद्धक्षेत्र का भीषण दृश्य दिखाई दे रहा है। वहाँ से कुछ दूर पर गङ्गा का पवित्र जल कलकल शब्द करता

हुआ बह रहा है। नदी का विस्तृत हृदय अब भी वैसा ही शान्त और स्वच्छ है। वह स्वार्थी मनुष्यों के सुख-दुःख, जय या पराजय से विचलित नहीं होता। वह पूर्ववत् ज्यों का त्यों स्थिर है।

क्रमशः रात गहरी हुई। चन्द्रमा का उदय हुआ। उसकी निर्मल निष्कलङ्क किरणें मनुष्यों के कलङ्क को प्रकट करने लगीं। प्रतिद्वन्द्वी भ्रातृगण परस्पर एक दूसरे के शोणित के प्यासे होकर बेतरह युद्ध की आग भड़का रहे हैं। गीदड़, भेड़िया, बाघ और भालू आदि हिंसक जन्तु भी अपनी जाति के ऊपर द्रोह नहीं करते किन्तु मनुष्य कैसा कठोर जीव है, जो अपने भाई को मार डालने के लिए युद्ध ठानने के साथ साथ असंख्य मनुष्यों का विनाश कर रहा है! चन्द्रमा के प्रकाश में दो राजपूत किसी मित्र की लाश ढूँढ़ने के लिए उस युद्धक्षेत्र में आये थे। एक जगह बहुत से मुर्दों का ढेर लगा था। उसमें से कोई वेदनासूचक शब्द कर रहा था। उन दोनों राजपूत सैनिकों ने देखा कि एक युवक मरने के लिए ऊपर को दम खींच रहा है और साथ ही धीरे धीरे कराह रहा है। उसके हृदय में शस्त्र की गहरी चोट लगी है। उस चोट की जगह से लगातार लोहू बहने के कारण वह मूर्छित हो गया है। किन्तु शीघ्र उसके मर जाने की कोई सम्भावना नहीं है।

युवक का चेहरा देखकर दोनों राजपूत विस्मित हुए। उस युवक की अवस्था बहुत अल्प थी। अठारह वर्ष से भी प्रायः अधिक न होगी। उसका सुडौल शरीर और मुख अत्यन्त सुन्दर था। उस मूर्छा की हालत में भी उसके मुँह पर वह शोभा थी जो प्रायः बहुत युवकों में साधारण अवस्था में भी नहीं पाई जाती। स्वरूप देखने से वह अभी बालक ही सा जान पड़ता था, योद्धा का कोई विशेष चिह्न उसके चेहरे पर न था। बाल्यावस्था में ही

वह हतभाग्य अपने देश तथा बन्धु-बान्धवों से बहुत दूर आकर आज प्राण खोने बैठा है।

युद्ध में असंख्य मनुष्यों को मरते देख इन दोनों राजपूत वीरों का हृदय पत्थर सा कठोर हो गया है। उनके हृदय की स्वाभाविक दया एक प्रकार से लुप्त हो चली है। वे दोनों उस बालक को देखकर हँसे और परस्पर इस प्रकार बातचीत करने लगे :—

पहला—देखो तो, यह लड़का इसी उम्र में युद्ध करने आया था।

दूसरा—यह शुजा की तरफ़ की सेना मालूम होती है। इस लड़के की तारीफ़ करनी चाहिए। क्योंकि यह युद्ध के खेत से एक पग भी पीछे नहीं हटा, बल्कि हम लोगों के अड्डे तक आकर इसने युद्ध किया है। मालूम नहीं, यह किस मुल्क का आदमी है!

पहला—मैं भी नहीं जानता।

दूसरा—मैं समझता हूँ, यह कोई बङ्गदेशीय हिन्दू है। मुग़ल या पठान होता तो ऐसा भेष न रहता।

पहला (ख़ूब ज़ोर से हँसकर)—शुजा इसी बङ्गाली बालक को लेकर महाराज जयसिंह और सुलेमान के साथ युद्ध करने आया था? अब युद्ध करने आवेगा तो हम लोग लड़ाई में न आवेंगे, इसके लिए अपने बालकों को ही भेज देंगे। चलो, अब यहाँ बहुत देर ठहरने की ज़रूरत क्या? जिसको ढूँढ़ने आये हैं उसको ढूँढ़ें। देखें, कहीं उसका पता लगता है या नहीं।

दूसरा—यह अभी तक जीता है। मालूम होता है, थोड़ी-सी सहायता से, यह बच जायगा। इसको छोड़ कर कैसे आयँ?

पहला—जो इस तरह दुश्मनों को बचाते फिरें तब तो हम

लोगों को अपना काम करने का वक्त ही न मिले। मैं अभी इस मामले को तय किये देता हूँ। यह कह कर उसने म्यान से तलवार खींची।

दूसरे ने उसे रोककर कहा—नहीं, नहीं, मरती हुई सेना को मारने की हमारे प्रभु महाराज यशवन्तसिंह की आज्ञा नहीं है। उन्होंने ऐसा करने का निषेध किया था। तुम जाओ, मैं इसे बचाऊँगा।

पहला राजपूत हँसते हँसते चला गया। दूसरे ने उस आहत युवक के मस्तक और आँखों पर जल छिड़ककर उसकी मूर्छा र की। युवक ने धीरे धीरे आँखें खोलकर देखा,—चारों ओर मुर्दों का ढेर लगा है, आकाश में चन्द्रमा का उदय हुआ है, युद्ध समाप्त हो गया। लड़ाई का खेत सूना पड़ा है। युवक ने बड़ी कृतज्ञतापूर्वक पूछा—आपने हमारी जान बचाई है। हम आपका नाम जानना चाहते हैं। जीत किसकी हुई? शुजा कहाँ गये?

राजपूत सैनिक ने कहा—मेरा नाम गजपतिसिंह है। मैं महाराज यशवन्तसिंह का सैनिक हूँ। इस समय महाराज जयसिंह की आज्ञा के अधीन हूँ। तुम्हारे शुजा की बात क्या कहूँ? वह अत्यन्त विलासप्रिय है। बेगमों के वियोग से कातर होकर वह वङ्गदेश की ओर लौट गया। अफ़सोस!

युवक अत्यन्त क्षुब्ध होकर धरती की ओर देखने लगा। फिर बोला—आप हमारे विपक्ष के सैनिक होकर भी भाई से बढ़कर हमारे साथ पेश आये हैं। आपने हमारे प्राणों की रक्षा की है। इस समय हमारी कुछ और सहायता कीजिए। थोड़ा-सा पानी पीने को दीजिए और ऐसी जगह में ले चलिए जहाँ हम दो-एक दिन आराम से रह सकें। हमारा देश यहाँ से बहुत दूर है। यहाँ हमारा अपना कोई भी नहीं। हम अनाथ की तरह इस

नगरी में आ गये हैं। इस समय एक आप ही हमारे प्राणों के अवलम्ब मिल गये हैं। हमारा नाम नरेन्द्रदाथ है। जल, थोड़ा जल पिला दो।

नरेन्द्र की किशोर अवस्था और सुन्दर स्वरूप देखकर गजपतिसिंह के हृदय में दया का उद्रेक हो आया था। बालक के कातर वचन सुनकर उस पर उनकी ममता और भी बढ़ गई। वे उसको पानी पिलाकर अपने शिविर (ख़ेमे) में ले गये।

दसवाँ परिच्छेद

राजा जयसिंह का शिविर

एक बहुत बड़े खेमे के भीतर दो वीर बैठे हुए परस्पर बातचीत कर रहे हैं। एक तो राजा जयसिंह हैं और दूसरा है उनका परम मित्र दिविरखाँ पठान।

राजा साहब की उम्र यद्यपि तारुण्य की सीमा को पार कर चुकी है तथापि उनका शरीर पहले ही का सा बलिष्ठ है। उनके मुखमण्डल पर अब भी वैसा ही तेज विराजमान है। उनके युवत्वकाल का सारा पराक्रम ज्यों का त्यों बना है।

उन दिनों मुग़ल बादशाह के प्रधान सेनापति अधिकांशतः राजपूत थे। राजपूतों के बाहुबल के प्रताप से ही मुग़ल लोग सिन्धु से लेकर ब्रह्मपुत्र तक समस्त भारतवर्ष का शासन कर रहे थे। जहाँ भारी विद्रोह की आशङ्का होती, जहाँ घोर युद्ध उपस्थित होता, वहीं खास कर राजपूत सेनापति भेजे जाते और वे प्रायः विजय प्राप्त करके ही आते थे। जिस समय की घटना के आधार पर यह उपन्यास बना है उस समय राजपूताने की राजमण्डली में दो व्यक्ति बड़े ही क्षमताशाली और प्रबल पराक्रमी थे। वे दो और कोई नहीं, एक तो यही राजा जयसिंह, और दूसरे राजा यशवन्तसिंह थे। सम्राट् शाहजहाँ इन दोनों पर पूर्ण विश्वास रखते थे। और किसी भारी बला को टालने की जब आवश्यकता पड़ती तब ये ही दोनों वीर चुने जाते थे। प्रबल वैरियों के दाँत खट्टे करने के हेतु युद्ध में ये ही दोनों राजपूत वीर भेजे जाते थे। वस्तुतः उस समय क्या मुग़ल,

क्या पठान, किसी भी सेनापति में वह प्रताप, साहस, या युद्ध-कौशल न था जो महाराज जयसिंह में था। जयसिंह के समान चतुर योद्धा एक भी न था। उन दिनों एक फ़रासीसी विद्वान् भारतवर्ष में बहुत दिनों से था। उसने मुक्तकण्ठ से यह बात कही थी कि जयसिंह के समान कार्यदक्ष पुरुष उस समय समस्त भारत में प्रायः कोई न था। शाहजहाँ और युवराज दारा ने जब सुलेमान को सुलतान शुजा के विरुद्ध भेजा था तब काशी के युद्ध में शुजा परास्त होकर बङ्गदेश की तरफ़ भाग चले।

शिविर के भीतर ख़ूब प्रकाश हो रहा है। बाहर पहरेदार पहरा दे रहे हैं। उस बड़े ख़ेमे के चारों ओर भी कितने ही ख़ेमे हैं। उस समय राजा के शिविर में और कोई न था। सिर्फ़ राजा और उनके प्रिय सुहृद् दिविरख़ाँ थे। वे दोनों आपस में यों ख़ानगी गप-शप कर रहे थे।

दिविरख़ाँ—आपका जैसा नाम है वैसे ही आपमें गुण हैं। जहाँ आप रहेंगे वहीं जय होगी। आपका जयसिंह नाम बहुत ठीक है।

राजा जयसिंह बोले—क्या आप आज के युद्ध की बात कह रहे हैं? युद्ध हुआ कहाँ? बङ्गदेश की सेना के साथ युद्ध ही क्या? इस युद्ध को भी क्या युद्ध ही कहेंगे?

दिविरख़ाँ—क्या आज के युद्ध में सुलतान शुजा ने साहस और वीरता नहीं दिखलाई?

जयसिंह—दिखलाई क्यों नहीं? मैं इसे स्वीकार करता हूँ। उन्होंने युद्ध के समय अपने साहस का परिचय दिया था। वे वीरता के समय विषय-विलास को एक-दम भूल गये थे। इसमें सन्देह नहीं। किन्तु केवल साहस से क्या होता है। वे युद्ध करना नहीं जानते। यदि उनमें युद्धकौशल होता तो इतना शीघ्र रणभूमि से उनके पाँव न उखड़ते।

दिविरखाँ—शाहज़ादों में सबसे चतुर कौन है ? किसमें युद्धकौशल अधिक है ? आप औरंगज़ेब को कैसा समझते हैं ?

जयसिंह—ओफ़ ! उनका नाम मत लो। वैसा चतुर, तीक्ष्णबुद्धि और गम्भीर आदमी आज तक मैंने नहीं देखा। उनमें जैसी वीरता है वैसा ही युद्धकौशल भी है। सुना है, उनको रोकने के लिए राजा यशवन्तसिंह नर्मदा नदी की ओर गये हैं। यशवन्तसिंह राना के जामाता हैं। उनके योद्धा और पराक्रमी होने में सन्देह नहीं। किन्तु औरंगज़ेब के साथ युद्ध छिड़ने पर परिणाम क्या होगा, नहीं कह सकते। यशवन्तसिंह साहसी हैं, पर युद्ध में उतने प्रवीण नहीं। मैं जहाँ तक समझता हूँ, इस भ्रातृविरोध के अन्त में औरंगज़ेब ही की जीत होगी।

दिविरखाँ—क्या आप दारा का पक्ष न लेंगे ?

जयसिंह—मेरी इच्छा ऐसी नहीं है कि दारा का पक्ष न लूँ। मैं दारा को कदापि छोड़ना नहीं चाहता। किन्तु इस युद्ध के अन्त में यदि औरंगज़ेब की जीत होगी तो उन्हीं को बादशाह मानना होगा। हम लोग दिल्ली के बादशाह के अधीन हैं। जब जो सम्राट् होंगे तब उनकी अधीनता स्वीकार करनी ही होगी। बादशाह के विरुद्ध आचरण करना राजविद्रोह है।

दिविरखाँ—अच्छा, यह तो बतलाइए कि आज आप चाहते तो शुजा को सहज ही बन्दी कर लेते। शुजा जब रणक्षेत्र से भाग निकला तब आप उसे धावा मारकर अनायास ही पकड़ सकते थे। यदि आप ऐसा करते तो युवराज दारा बहुत ख़ुश होते। पर आपने क्यों ऐसा नहीं किया ?

जयसिंह—मैंने जानबूझ कर शुजा को छोड़ दिया और उसे भागने का मौक़ा दिया। उसका कारण है। भाई भाई में जैसी जानी दुश्मनी चल रही है, भाई के ऊपर भाई की जैसी हिंसात्मक बुद्धि दिखाई दे रही है, उससे यही जान पड़ता है कि यदि मैं शुजा को दारा के पास ले जाता तो युवराज उसे

प्राणदण्ड देते या यावज्जीवन उसे क़ैद कर रखते। तुम्हीं कहो, क्या यह उचित होता? दूसरी बात यह कि इस युद्ध में आने के समय बादशाह शाहजहाँ ने मुझसे कह दिया था कि ऐसा प्रयत्न करना जिसमें युद्ध न हो। उनकी इच्छा नहीं कि शुजा की हानि हो। बादशाह के उस कथन के अनुसार मैंने सन्धि-स्थापन की बात शुजा को कहला भेजी थी। शुजा भी एक प्रकार से इस बात पर राज़ी थे। किन्तु सुलेमान ने, नई जवानी के जोश में आकर, अपनी बहादुरी दिखलाने के लिए अधीर होकर एकाएक गङ्गा पार होकर युद्ध आरम्भ कर दिया।

इस तरह की बातचीत हो रही थी। ऐसे समय एक चोबदार ने आकर इत्तिला दी, "महाराज, सेनाध्यक्ष गजपतिसिंह बाहर खड़े हैं। हुज़ूर में हाज़िर होना चाहते हैं।" महाराज ने आने की आज्ञा दी।

क्षण भर पीछे गजपतिसिंह आकर बोले—महाराज! वङ्गदेश का एक हिन्दू बन्दी हुआ है। वह अभी घायल है। उससे वङ्गदेश की बहुत-सी बातों का पता लग सकता है।

राजा जयसिंह कुछ सोचकर बोले—अच्छा, अभी उसे मेरे ख़ेमे में रहने दो।

नरेन्द्र उसी मूर्छा की हालत में ख़ेमे में लाया गया। पीछे से जयसिंह ने गजपतिसिंह को पुकारकर कहा—गजपति, आज युद्ध के समय तुमने हमारी बहुत सहायता की है। इस कारण हम तुमको, और तुम्हारे मालिक यशवन्तसिंह को धन्यवाद देते हैं। यशवन्तसिंह ने क्या कहने के लिए तुमको हमारे पास भेजा है? कह सुनाओ।

दोनों चुपके चुपके आपस में बातें करने लगे।

*

ग्यारहवाँ परिच्छेद

ज़ुलेखा ?

सुरेन्द्र को ज्वर हो गया। वह कई दिनों तक अचेत अवस्था में पड़ा रहा। बीच बीच में जब उसे कुछ संज्ञा हो आती तब उसे मालूम होता, जैसे वह नाव पर सवार हो बड़े वेग से गङ्गा के प्रवाह में चला जा रहा है। क्या वह फिर अपने देश को लौटा जा रहा है? उसके मन में होता जैसे एक अल्पवयस्का रमणी उसकी सेवा कर रही है। क्या फिर उसे हेमलता मिल गई? उसके नेत्रों में आँसू भर आते थे।

कुछ दिन यों ही बीते। रोग धीरे धीरे हटने लगा। जब उसे पूर्णरूप से चेत हुआ तब उसने अपने को एक अपूर्व स्थान में चारपाई पर पड़ा पाया। ऐसा सुन्दर, सुगन्धित घर आज तक उसने कभी न देखा था। सारा घर संगमर्मर का बना है। चाँदी का मोमी शमादान सामने जल रहा है। सारा घर सुगन्ध से आमोदित हो रहा है। जिस पलँग पर वह लेटा था वह हाथी-दाँत का बना था। उस पर सोने-चाँदी का काम किया हुआ था। सामने एक चाँदी से मढ़ी हुई तिपाई पर चाँदी का जलपात्र रक्खा है। उसकी शय्या से कुछ अन्तर पर नीचे एक विचित्र ग़लीचा बिछा है। उस पर एक यवन-बालिका और एक ख्वोजा बैठे हुए परस्पर मीठी मीठी बातें बड़ी मुलायमियत के साथ कर रहे हैं। यवनकन्या युवती है, और अत्यन्त सुन्दरी है। उसका कोमल शरीर नज़ाकत से भरा हुआ है। नये यौवन की बहार उसके मुखमण्डल की शोभा को दूनी बढ़ा रही है। उसकी

कमल सी आँखें और गुलाब से दोनों गालों की छवि न्यारी ही है। उसके सभी अङ्ग सुडौल हैं। अङ्ग अङ्ग से शोभा बरस रही है। हेमलता का सलोना स्वरूप नरेन्द्र के हृदय में अङ्कित था। किन्तु ऐसा दिव्य स्वरूप नरेन्द्र ने आज तक न देखा था। ऐसी रमणीय मूर्ति—साक्षात् अप्सरा सी रूपवती स्त्री—उसने कभी न देखी थी। यवनकन्या की बोलचाल और रूप-रङ्ग देखने ही से जान पड़ता था कि वह किसी आली खानदान की लड़की है। उसकी दृष्टि तेज से खाली न थी और न उसके अंग की सुकुमारता अभिमान से विहीन थी। वह नाज़नी एक बार शय्यागत हिन्दू की ओर देखती और एक बार बड़ी उदासी के साथ धरती की ओर निहारती थी। बीच बीच में खोजा के साथ धीमे स्वर में बातें भी करती जाती थी। खोजा का रङ्ग काला और शरीर बलिष्ठ था। उन दोनों में क्या बातें हो रही थीं, नरेन्द्र कुछ न समझ सका। केवल दो-एक बातें उसे सुन पड़ीं। जो सुन पड़ीं वे इस प्रकार थीं;—यवनबालिका कह रही थी—मशरूर, मेरा और इस हिन्दू का क्यों सर्वनाश करते हो? निर्दोष असहाय व्यक्ति की जान लेने से तुम्हें क्या लाभ होगा? क्या सुख मिलेगा?

मशरूर—ज़ुलेखा, तुम काफ़िर को यहाँ क्यों लाईं?

ज़ुलेखा—यह मेरा क़सूर है, इसमें इस बेचारे का क्या दोष है? यह तो निर्दोष है।

मशरूर—इतना जाल फैलाने की क्या जरूरत? यह काफ़िर तुम्हारा आशिक़ तो नहीं है?

ज़ुलेखा वीरबालिका थी। उसके चेहरे पर क्रोध का चिह्न दीख पड़ा। चेहरा उसका लाल हो गया। उसकी आँखों से अग्नि के कण झरने लगे। वह क्रोध से बोली—मशरूर! यदि तुम स्त्री होते तो जाल की बात तुम्हारी समझ में आ जाती। यदि तुममें पुरुषार्थ रहता तो तुम्हारे हृदय दया रहती।

तुम्हारे पुरुषत्व के साथ तुम्हारी दया भी लुप्त हो गई है। देखती हूँ, तुम्हारा हृदय पत्थर से भी अधिक कठोर है।

मशरूर ने हँसकर कहा—यह देखो, काफ़िर जाग पड़ा। मैं अब जाता हूँ। मशरूर चला गया।

.जुलेख़ा भी अपनी जगह से उठी और धीरे धीरे शय्या की ओर बढ़ चली। दो-चार पग चलकर वह एकाएक खड़ी हो रही। धरती की ओर नज़र करके वह मन ही मन कुछ सोचने लगी। फिर तुरन्त नरेन्द्र के पास आकर उसने घाव को भली भाँति देखा। घाव अब भर आया है, ज्वर भी हट गया है। केवल शरीर दुर्बल है। नरेन्द्रनाथ विस्मित होकर टकटकी बाँध उसके मुँह की ओर देखने लगा। .जुलेख़ा का मुँह लाल हो गया। उसके सारे शरीर में बड़े वेग से ख़ून बह चला, मानो उसकी नस-नस में बिजली दौड़ गई हो। पहले इस आलीशान मकान और राजोचित शय्या को देखकर नरेन्द्र चकित हो रहा था। वह कहाँ आया है, कौन उसे लाया है, कौन उसकी सेवा-शुश्रूषा करता है? उसे कुछ मालूम न हुआ। वह .जुलेख़ा और मशरूर की बातें सुनकर डर गया था। अब .जुलेख़ा का आचरण देख वह और भी विस्मित हुआ। उसने पूछा—मैं कहाँ हूँ! क्या यह वङ्गदेश है? तुम कौन हो, तुम्हारा क्या नाम है?

निस्तब्ध रात में बिना बादल के मेघ-गर्जन सुनकर लोग जैसे चौंक उठते हैं। उसी तरह नरेन्द्र के मुँह से यह प्रश्न सुन कर .जुलेख़ा सहसा चौंक उठी। उसने नरेन्द्र के प्रश्न का कुछ उत्तर न देकर धीरे धीरे अपने ओठों पर अँगुली रक्खी।

नरेन्द्र ने फिर कहा—मैं असहाय अवस्था में हूँ। मैं नहीं जानता। यह कैसा स्थान है। कृपा करके मुझे बतलाओ।

ज़ुलेख़ा ने इस बार उसी तरह होठों पर उँगली रक्खे हुए मुँह फेर लिया। नरेन्द्रनाथ को जान पड़ा जैसे ज़ुलेख़ा की आँखों में आँसू भरे हों। ज़ुलेख़ा के मुँह से कुछ सुनने का सौभाग्य उसको न हुआ और न ज़ुलेख़ा का कुछ अभिप्राय ही उसकी समझ में आया। वह इस अपूर्व घटना की बात को सोचता सोचता फिर सो गया।

बारहवाँ परिच्छेद

स्वप्न है या इन्द्रजाल ?

कई दिन बाद नरेन्द्रनाथ पूर्णरूप से नीरोग हो गया। किन्तु शारीरिक आरोग्य होने ही से क्या होगा, उसका अन्तःकरण तो चिन्ता से चकनाचूर हो रहा था। जिस घर में वह था उसमें मशरूर और .ज़ुलेखा के सिवा कोई न आता था। न कोई कुछ पूछता और न किसी बात का कुछ जवाब ही देता था। मशरूर से कुछ पूछा जाता तो वह हँसकर चला जाता था और .ज़ुलेखा ओंठ पर उँगली रखकर चुप हो रहती थी। पर इतना स्पष्ट मालूम होता था कि वह उसके दुःख से दुखी है और उसकी विपदा से विपदापन्न है। नरेन्द्रनाथ कुछ स्थिर न कर सका कि वह कहाँ आया है। कभी कभी उसको वङ्गदेश में आने की आशङ्का होती थी। नरेन्द्र को सुलतान शुजा बहुत चाहता था। तो क्या शुजा ही ने मूर्छा की हालत में नरेन्द्र को राजमहल में मँगा कर अपने राजमन्दिर में रहने को जगह दी है ? हो सकता है। राज-भवन न होने से ऐसी बहु-मूल्य वस्तुएँ कहाँ देखने में आतीं ? किन्तु शुजा तो काशी के युद्ध में पराजित हुए थे। नरेन्द्रनाथ शस्त्राघात से मृतप्राय होकर शत्रु के हाथ वन्दी हो गया था। यह बात उसे कुछ कुछ मालूम थी। तो क्या दुश्मन आखिर उसे जल्लाद के हाथ में सौंपने ही के लिए इतनी सेवा-शुश्रूषा कर रहा था ? नरेन्द्र कुछ निश्चय न कर सका।

आधी रात का समय है। नरेन्द्रनाथ एक हाथीदाँत की बनी

हुई चौकी पर बैठा है। सामने एक शमादान जल रहा है। नरेन्द्र गम्भीर चिन्ता में निमग्न है।

कुछ देर बाद जब उसकी चिन्ता का सूत्र टूटा, एक बार उसने सिर उठाकर सामने की ओर देखा। क्या देखा? ज़ुलेखा चुपचाप सामने खड़ी है। उसका मुँह पीला पड़ गया है; ओठ सूखे हैं; बाल बिखरे हुए हैं; चेहरे पर उदासी छाई हुई है; और दोनों आँखों में आँसू भरे हुए हैं। यह देखकर नरेन्द्र विस्मित हुआ। उसने पूछा—क्या हुआ जो मैं आपको नहीं चीन्हता, फिर भी मुझसे आप अपना अभिप्राय कह सुनावें।

ज़ुलेखा ने कुछ उत्तर न दिया। धीरे धीरे उसने आँखों के आँसू पोंछ डाले।

नरेन्द्र ने फिर कहा—आपको देखने से ऐसा जान पड़ता है जैसे कोई विपत्ति या भय शीघ्र आनेवाला है। आप साफ़ साफ़ कह डालें। यदि उद्धार का कोई उपाय होगा तो मैं चेष्टा करूँगा।

ज़ुलेखा कुछ न बोली। आँसू पोंछती हुई धीरे धीरे चली गई।

नरेन्द्र को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। वह आधी रात को ज़ुलेखा के आने और चुपचाप लौट जाने का कुछ अभिप्राय न समझ सका। उसको ऐसा मालूम होने लगा कि कोई भारी सङ्कट उसके ऊपर आनेवाला है। वह गाल पर हाथ रखकर सोचने लगा। वह मन ही मन नाना प्रकार की विपत्तियों के आने का संकल्प-विकल्प करने लगा।

इतने में एकाएक घर का चिराग़ बुझ गया। उस घोर अन्धकार में एक खोजा ने नरेन्द्र को अपने साथ चलने के लिए धीरे से उसके पास जाकर कहा। नरेन्द्र भय से चकित होकर धीरे धीरे उसके पीछे पीछे चला। दोनों चुपचाप कितने

घर, कितने आँगन, और कितने दर्वाज़े पार कर गये, उनकी संख्या नहीं। नरेन्द्र ने वहाँ का राजभवन देखा था। किन्तु ऐसा विचित्र महल उसने आज तक कभी नहीं देखा। कहीं संगमर्मर की चित्रविचित्र कोठरियाँ बनी हैं जिनमें कपूर की बत्ती जल रही है। कहीं संगमर्मर का चबूतरा बना है। कहीं लाल पत्थर की सीढ़ियाँ बनी हैं। कहीं संगमर्मर के विशाल खंभों पर नक्क़ाशी का काम किया हुआ है। कहीं सोने-चाँदी के नक्क़ाशीदार खम्भे, और छतें कारीगरी का नमूना दिखला रही हैं। ऐसी बारीक़ कारीगरी है कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता। कहीं उद्यान में फ़व्वारे का जल मोती की तरह बरस रहा है। कहीं तरह तरह के फलवान् वृक्ष और कहीं फूलों के सुहावने पेड़ फूलों से लदे दीख पड़ते हैं। कहीं उद्यान के किसी पेड़ के नीचे दो एक गौराङ्गी नवयौवना वीणा बजा रही हैं। कोई नींद से सोई हुई हैं। बाहर खोजा लोग हाथ में तलवार लिये इधर-उधर चुपचाप घूम रहे हैं। ठंढी हवा धीरे धीरे पेड़ों के साथ लिपट रही है। यह दृश्य देखकर नरेन्द्र अपनी विपत्ति की बात भूल गया। सुन्दर प्रासाद, सुन्दर घर, रमणीय उद्यान और अप्सराओं सरीखी इन सुन्दर रमणियों को देखकर वह चकित हुआ।

बहुत देर पीछे वह एक सुवर्णजटित ऊँचे किवाड़ के निकट आ पहुँचा। वह किवाड़ एकाएक भीतर से खुल गया। नरेन्द्र ने विद्युद्दीपावली से प्रकाशमान घर में प्रवेश किया। सहसा अन्धकार से इतने तेज़ उजाले में आने के कारण उसकी दृष्टि चौंधिया गई। प्रकाश के अतिरिक्त उसे कुछ न सूझा। रोशनी इतनी तीव्र थी कि वह सह न सका। दोनों हाथों से उसने अपनी आँखें छिपा लीं। उसी समय एक साथ सैकड़ों स्त्रियों के कोमल कण्ठ से निकली हुई हँसी का मधुर शब्द उस विशालभवन में भर गया।

नरेन्द्र को जीवन भर में कभी इस तरह के आश्चर्य्यजनक कौतुक से भेंट न हुई थी। वह आश्चर्य्य में डूब गया। यह यथार्थ में सच है या स्वप्न? यह सच्ची घटना है या भानमती की करामात? नरेन्द्र ने फिर आँखें खोलीं, फिर उस तेज़ रोशनी ने उसकी आँखों में चकाचौंधी पैदा कर दी, फिर उसने आँखें बन्द कीं, और फिर उसी तरह स्त्रियों के हँसने का शब्द सुन पड़ा।

कुछ देर बाद जब नरेन्द्र की चकाचौंध मिटी, दृष्टि स्थिर हुई तब उसने जो कुछ देखा, उससे उसका आश्चर्य दसगुना अधिक बढ़ गया। उसने देखा—वह एक संगमर्मर के सुविशाल सुन्दर भवन के भीतर खड़ा है। छत से सम्बन्ध रखनेवाले पत्थर के ऊँचे ऊँचे खम्भों पर रङ्ग-बिरङ्ग के पत्थरों से जो चित्रकारी का बारीक़ काम किया हुआ है वह देखते ही बन आता था, उसका वर्णन कोई कहाँ तक कर सकता है। नरेन्द्र ने वैसी चित्रकारी आज तक कहीं न देखी थी। खम्भों पर सुगन्धित फूलों की मालायें लटक रही थीं। नीचे भाँति भाँति की सजावट की चीज़ें क़रीने से रक्खी थीं। जितनी स्त्रियाँ थीं सभी के गले में फूल-माला थी। फूलों की सुगन्ध से सारा घर आमोदित हो रहा था। रङ्ग-बिरङ्ग की सीसक-निर्म्मित दीपावली की ज्योति से एक अपूर्व ही शोभा प्रकट हो रही थी। क़तार बाँधे भूषण-वस्त्र से सुसज्जित एक सौ स्त्रियाँ खड़ी हैं। उनके बीच में चमचमाते हुए रत्नजटित सिंहासन पर उन स्त्रियों की स्वामिनी बैठी है। नरेन्द्र देखकर दंग हो रहा। यह स्वप्न है या इन्द्रजाल? कुछ उसकी समझ में न आया। वह इस विस्मयकारी दृश्य को जागृत अवस्था में देख रहा है या स्वप्न में, इसका भी वह निर्णय नहीं कर सका। नरेन्द्र ने अलिफ़लैला में पढ़ा था कि अबुलहसन नाम का एक दरिद्र व्यक्ति एक दिन सोकर उठा तो उसे जान पड़ा कि जैसे वह बग़दाद का खलीफ़ा बन गया हो! नरेन्द्र का यह स्वप्न उसकी अपेक्षा भी अधिक विस्मयकारी है। मानो उसने अपने को एका-

एक स्वर्गीय उद्यान में अप्सराओं से घिरा देखा।

नरेन्द्र ने पलक उठाकर एक बार उन रमणियों की पंक्ति की ओर देखा। वे सब बाअदब चुपचाप खड़ी हैं। सभी दोनों हाथ अपनी अपनी छाती पर रक्खे धरती की ओर निहार रही हैं। उनको देखने से यही जान पड़ता था जैसे वे सबकी सब पत्थर की पुतलियाँ हों। उनकी केशराशि में गुँथे हुए हीरे-मोतियों की चमक से रोशनी मलिन हो रही थी। जड़ाऊ भूषण-वस्त्रों की चमचमाहट उस दीपावली के उजाले में और भी अधिक बढ़ रही थी। वे सब स्त्रियाँ मानो अपनी स्वामिनी की आज्ञा की आशा से चुपचाप खड़ी थीं।

नरेन्द्र ने जब सिंहासन पर बैठी हुई स्त्री की ओर देखा तब तो उसके आश्चर्य की सीमा न रही। उसकी चमक दमक, ठाट बाट सबसे चढ़ा बढ़ा था। यद्यपि उसकी उम्र जवानी से उतर चुकी है तथापि यौवन की श्री उसके शरीर में अब तक बनी है। उसका चेहरा देखकर कोई यह न कहेगा कि यह युवती नहीं है मानों उसके अंग-अंग में अब भी यौवन का मद भरा है। अब भी वह तारुण्य के अभिमान को अपने साथ लिये हुए है। साथ ही रोबदार चेहरे से एक प्रकार का तेज निकल रहा है। इस सिंहासनस्थ रमणी को अब हम बेगम लिखेंगे। बेगम का क़द लम्बा सा और सुडौल था, दोनों होंठ विद्रुम से लाल थे। उसके भौंरे जैसे काले बालों में गुँथे हुए हीरे-मोतियों की ज्योति जगमगा रही थी। मलमल के घूँघट में वह अपने मुखचन्द्र के प्रकाश को नहीं छिपा सकती थी। उसे देखकर कोई यह नहीं कह सकता कि वह स्वर्ग की अप्सरा नहीं है। स्वर्ग की अप्सरा हो चाहे मानवी, पर थी वह कोई अवश्य असाधारण स्त्री।

किन्तु नरेन्द्र को यह सब स्थिर होकर देखने का अवसर कहाँ! बेगम को अभी तक उसने भली भाँति देखने भी नहीं पाया था कि इतने में स्वर्गीय संगीत की वाद्य-ध्वनि उसके कानों में

प्रविष्ट होने लगी। उसके साथ उन सैकड़ों स्त्रियों का कण्ठस्वर भी जा मिला। ऐसा मनोहर गान आज तक नरेन्द्र ने कभी नहीं सुना था। उसका सारा शरीर रोमाञ्चित हो उठा। वह चित्रवत् खड़ा खड़ा गीत सुनने लगा। गाने का रंग धीरे धीरे जमने लगा। धीरे धीरे तान की मात्रा भी बढ़ने लगी। मानो वह तान उस विशाल भवन को अतिक्रम करके आकाशमण्डल में फैलने लगी। फिर धीरे धीरे तान की तरंग घटने लगी और अन्त में एकदम विलीन हो गई। फिर तान शुरू हुई, फिर धीरे धीरे लीन हुई। इसी तरह दो तीन बार संगीत की अपूर्व ध्वनि सुन पड़ी।

बेगम ने ज़ोर से धरती पर पैर पटका, तुरन्त प्रासाद की एक ओर लाल रङ्ग की यवनिका नीचे गिरी। नरेन्द्र ने सचकित दृष्टि से देखा कि पर्दे के बाहर काले-कलूटे चार खोजे लाल रंग का कपड़ा पहने, हाथ में ख़ंजर लिये खड़े हैं। बेगम ने फिर धरती पर पद-प्रहार किया। यह देख उन खोजों में जो प्रधान था वह झट बेगम के सिंहासन के पास जा खड़ा हुआ। नरेन्द्र ने उसे पहचाना। वह मशरूर था। मशरूर को देखते ही नरेन्द्र के प्राण सूख गये। काटो तो बदन में ख़ून नहीं। मशरूर बड़ी मुलायमियत के साथ धीमे स्वर में बेगम से कुछ रहस्य की बात कहने लगा। वह इतना मन्द मन्द बोल रहा था कि नरेन्द्र कुछ भी न सुन सका। किन्तु उसने इतना ज़रूर समझ लिया कि वह उसी के सम्बन्ध में कुछ कह रहा है। क्योंकि बात करते समय बीच बीच में वह नरेन्द्र की ओर उँगली दिखलाता था और बीच बीच में आँखें लाल कर दाँत पीसता हुआ क्रोध का भाव व्यञ्जित करता था। मशरूर क्या कह रहा था, यह तो नरेन्द्र नहीं जान सका, किन्तु उसके सङ्केत और आकृति को देखकर नरेन्द्र का हृदय काँपने लगा। उसके जी में इस बात का निश्चय होने लगा कि उसे इस अज्ञात देश में वधिकों के हाथ में पड़कर प्राणों से हाथ धोने पड़ेंगे।

बेगम ने फिर ज़ीमन पर पैर पटका कि तुरन्त उस घर में दूसरी तरफ़ हरे रंग का पर्दा गिरा। पर्दे के बाहर हरे रंग की पोशाक़ पहने चार फ़र्माबरदार औरतें आ खड़ी हुईं। बेगम के पैर का इशारा पाते ही वे चारों स्त्रियाँ एक बन्दी को बेगम के पास पकड़कर ले आईं। नरेन्द्र उस बन्दी को देखकर बड़े अचम्भे में आया। वह और कोई न था, बन्दी के रूप में वही ज़ुलेखा थी।

ज़ुलेखा ने क्या कहा, यह नरेन्द्र के कानों तक न पहुँचा। किन्तु उसके इङ्गित-आकार से मालूम होता था कि वह बेगम से क्षमा की प्रार्थना कर रही है और आँसू बहाती हुई बेगम के पैरों पर लोट रही है।

बेगम ने बार बार नरेन्द्र की ओर देखा। नरेन्द्र की कान्ति स्वभावतः तपाये हुए सोने की सी थी। नेत्र बहुत बड़े बड़े थे। ललाट ऊँचा और चौड़ा था। चेहरे पर तेज की झलक थी। बेगम उस नवीन सुन्दर युवा के उन्नत ललाट और सुन्दर मुँह की ओर बार बार देखने लगी।

नरेन्द्र की ओर बहुत देर तक बारंबार देखते देखते बेगम को उसके हाथ में एक अँगूठी देख पड़ी। हतभागिनी ज़ुलेखा ने नरेन्द्र की बीमारी की हालत में एक दिन अपनी अँगूठी उसकी उँगली में पहना दी थी। तब से वह उसी की उँगली में थी। बेगम की लौंडियों ने उस अँगूठी को पहचाना, बेगम ने स्वयं उसे चीन्हा। नरेन्द्र की उँगली में ज़ुलेखा की अँगूठी देखकर बेगम का क्रोधानल और भी प्रदीप्त हो उठा। क्रोध से उसका चेहरा लाल हो गया। आँखों से अग्नि की चिनगारियाँ झरने लगीं।

कुछ देर में दोनों अपराधियों के दण्ड का फ़ैसला हो गया। कठोर-हृदया बेगम ने हुकम दिया—ज़ुलेखा अपराधिनी है। इस पापिनी को शूली दो। काफ़िर को यहाँ से ले जाओ। हाथी

के पाँव से कुचलवाकर इसकी जान ले लो।

यह हुक्म देकर बेगम उठ गई। जितनी दीपावली बल रही थी, एक साथ बुझ गई। खोजा लोग उस अँधेरे में चुपचाप नरेन्द्र के हाथ-पाँव बाँधने लगे।

उस घोर अन्धकार में न मालूम किसने नरेन्द्र के मुँह के सामने एक गिलास रक्खा। नरेन्द्र का कण्ठ मारे प्यास के सूख रहा था। उद्वेग, आश्चर्य और भय से उसके हृदय में आग सी लग रही थी। उसने बड़े चाव से पानी पिया। परन्तु पानी पीते ही वह बेहोश हो गया। फिर पीछे क्या हुआ, उसे कुछ भी मालूम नहीं। केवल उसे इतना जान पड़ा, जैसे उस अन्धकार में किसीने उसके हाथ से अँगूठी उतार ली हो, और उसके कानों में किसी के रोने का शब्द सुन पड़ा। मानो उसने स्वप्न में देखा कि वह रोनेवाली अभागिनी ज़ुलेखा थी।

नरेन्द्रनाथ की जब नींद टूटी तब उसने देखा, सूर्योदय हो चुका है। वह बाज़ार में एक पर्णकुटी के निकट पड़ा है। सूर्य की प्रातःकालिक किरण उसके मुँह पर पड़ रही है। घाट, बाट, नगर, बस्ती, महल, अटारी आदि सभी सूर्य के प्रकाश में स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं। नरेन्द्र इस अपूर्व स्थान को देख कुछ निर्णय न कर सका कि वह कहाँ है। उसके मन में भाँति भाँति की चिन्तायें होने लगीं। अनेक प्रकार की आशङ्कायें उसके चित्त को डावाँडोल करने लगीं। वह सोचने लगा, क्या यह वङ्गदेश की राजधानी राजमहल तो नहीं है? क्या सुलतान शुजा अनुग्रह करके उसे काशी के रणक्षेत्र से यहाँ ले आये हैं। क्या गत रात्रि में उसने इसी जगह धरती पर सोकर उस विचित्र राज-मन्दिर और बेगम का स्वप्न देखा था?

तेरहवाँ परिच्छेद

गजपतिसिंह

नरेन्द्र के आश्चर्य की सीमा न रही। उस स्थान को इसके पहले उसने कभी नहीं देखा था। वह स्थान उसे एक अतिथिशाला की तरह दीख पड़ा। बीच में मैदान और उसके चारों ओर दो-महला मकान है जिसमें अनेक कोठरियाँ हैं। हरेक कोठरी में दो-एक आदमी देख पड़े। उनमें अधिकांश लोग व्यवसायी थे। बड़े बड़े सम्भ्रान्त पारसी, पठान, या हिन्दू जो पहले पहल उस शहर में आते थे वे, पहले उसी धर्मशाला में उतरते थे। रात में धर्मशाला का फाटक बन्द हो जाता था। इस समय सबेरा हुआ जान फिर फाटक खुला। लोग धर्मशाला के बाहर-भीतर आने जाने लगे।

एक फ़ारस देश का बूढ़ा मुसलमान कोठरी में बैठा हुक्क़ा पी रहा था। नरेन्द्र ने उससे जाकर पूछा—शेख़ साहब, यह कौन शहर है? मैं यहाँ पहले पहल आया हूँ। इसी से यहाँ का हाल मुझे कुछ मालूम नहीं।

शेख़ साहब ने कहा—बच्चा, हम भी वाणिज्य की इच्छा से कल ही यहाँ आये हैं। शहर का विशेष हाल हम भी कुछ नहीं जानते।

नरेन्द्र—तो भी आप मुझसे ज़रूर कुछ ज्यादा जानते होंगे। यहाँ का कुछ हाल मेहरबानी करके मुझसे कहिए।

शेख़—तुमसे हम सच ही सच कह रहे हैं कि इस शहर का कुछ भी हाल हम नहीं जानते। हमने इतना ही सुना है कि

यह बेगम साहबा का मुसाफिरखाना है। बादशाह की बड़ी लड़की ने शहर के नये आगन्तुकों के आराम से रहने के लिए यह अतिथिशाला बनवा दी है। हमने समरकन्द, बोखारा, शीराज़ और इस्फहान आदि अनेक शहर देखे हैं, मगर ऐसा दिलचस्प सुन्दर शहर आज तक नहीं देखा।

नरेन्द्र—इस शहर का नाम क्या है? शाहज़ादी कौन है? कहाँ रहती है? आप जानते हों तो बता दें।

बूढ़े सौदागर ने बड़ी देर तक स्थिर दृष्टि से नरेन्द्र के मुँह की ओर देखा, और फिर नौकर को पुकारकर कहा—देखो यह काफ़िर बड़ा बेवकूफ़ है। इस पगले को यहाँ से भगा दो। कौन जाने, पागलपन ज़्यादा बढ़ जाने पर किस घड़ी क्या कर बैठे!

उसका यह कठोर भाषण सुनकर नरेन्द्र स्वयं वहाँ से हट गया। कुछ देर पीछे उसने देखा कि एक पठान जाति की औरत टोकरी में कुछ फल-फलहरी इत्यादि खाने की वस्तुएँ लिये धनी व्यापारियों के पास बेचने को जा रही है। नरेन्द्र ने झट उसके पास जाकर पूछा—बीबी, इस शहर का नाम क्या है? इस जगह को लोग क्या कहते हैं?

वृद्धा चकित होकर नरेन्द्र की ओर ताकने लगी। कुछ देर ठहरकर बोली—मैं तुम्हारे पूछने का मतलब समझ गई। मेरी अब वह उमर नहीं। तुम हमसे दिल्लगी उड़ाने आये हो। जाओ, जाओ, कहीं दूसरी जगह जाकर दिल का अरमान पूरा करो। ऐसा ख़ूबसूरत चेहरा देखकर तुम पर कितनी ही रण्डियाँ लट्टू होंगी।

नरेन्द्र को फिर उससे कुछ पूछने का साहस न हुआ। उसने देखा, सामने एक राजपूत सैनिक खड़ा है। एक नौकर उसके घोड़े की सेवा कर रहा है। सैनिक हर्बे हथियार से लैस हो नौकर को बार बार ताकीद कर रहा है कि शीघ्र घोड़े को

खिला-पिलाकर तैयार कर दे। नरेन्द्र ने उस सैनिक से पूछा—मैं यहाँ नया नया आया हूँ। मैं इस शहर का नाम तक नहीं जानता। मालूम होता है, आप यहाँ बहुत दिनों से हैं। क्या इस शहर का कुछ हाल मुझे बता सकते हैं ?

राजपूत सैनिक ने बहुत देर तक नरेन्द्र की ओर ध्यानपूर्वक देखकर कहा—शायद हमने कहीं तुम्हें देखा है। तुम बङ्गाल से आये हो न ? हाँ, अब स्मरण हुआ। शायद इस अरसे में तुम हमें भूल गये।

तब नरेन्द्र ने उसके मुँह की ओर ध्यान से देखा। नरेन्द्र को धक से याद हो आई। उसने कहा—नही, नहीं, मैं नहीं भूलता हूँ गजपतिसिंह जी ! काशी का युद्ध होने के बाद आप ही ने मेरी जान बचाई थी। मैं जब तक जीता रहूँगा, कभी आपको नहीं भूल सकता।

दोनों में बहुत देर तक बातें हुईं। अब नरेन्द्र को मालूम हुआ कि यह शहर हिन्दुस्तान की प्रसिद्ध राजधानी दिल्ली है। बात ही बात में गजपतिसिंह ने नरेन्द्र से कहा—"महाराज जयसिंह से बिदा होकर हम उनकी दी हुई कुछ चिट्ठी वगैरह लेकर महाराज यशवन्तसिंह के पास जा रहे हैं। वे अभी उज्जैन में औरंगज़ेब से युद्ध करने गये हैं। युद्ध होने के पहले ही हम वहाँ पहुँच जायँ तो बड़ा अच्छा हो। तुम्हारी इच्छा हो तो हमारे साथ चलो। हम महाराज से निवेदन करके तुम्हें घुड़सवार का काम दिला देंगे।" नरेन्द्र वहाँ अपने को बन्धु-हीन और द्रव्यहीन देखकर उनके साथ जाने के लिए राज़ी हो गया। तदनन्तर दोनों दिल्ली शहर देखने को निकले।

महाभारत में वर्णित इन्द्रप्रस्थ नगर जहाँ था, भारतवर्ष के अन्तिम हिन्दू सम्राट् पृथ्वीराज की राजधानी दिल्ली नगर जिस जगह बसा था; वहाँ पर बादशाह शाहजहाँ ने नई राजधानी स्थापित करके अच्छी अच्छी इमारतें और क़िला बनवाकर नगर

का नाम शाहजहानाबाद रक्खा। जिस समय की यह आख्यायिका लिखी जा रही है उससे कुछ पूर्व की यह घटना है। किन्तु नगरी के उक्त नवीन नाम का प्रचार न हुआ। शाहजहानाबाद दिल्ली का नाम है, यह प्रायः कोई नहीं जानता। अब भी शाहजहाँ का बसाया हुआ शहर दिल्ली के नाम से मशहूर है। पृथ्वीराज के समय का रक्खा हुआ हिन्दू नाम अब तक क़ायम है—बदला नहीं।

दिल्ली के एक तरफ़ यमुना नदी है और तीन तरफ़ क़िले की धनुषाकार दीवारें खड़ी हैं। दीवार बहुत ऊँची थी। उस पर से लोगों के जाने-आने का एक रास्ता बना था। यमुना और इस दीवार के भीतर दिल्ली शहर बसा था; किन्तु दीवार के बाहर भी तीन-चार बड़े बड़े महल्ले थे जिनमें अमीर-उमरा, धनी-महाजन और हिन्दू राजाओं के कितने ही ऊँचे ऊँचे महल और बाग़ दूर ही से नज़र आते थे। शहर के भीतर यमुना नदी के समीप, पत्थर का एक छोटा सा, पर मज़बूत क़िला बना था। उसके भीतर बादशाह का प्रासाद था। उसमें संगमर्मर की बनी हुई भाँति भाँति की बृहत् अट्टालिकायें अपनी शोभा और सम्पत्ति से इन्द्रभवन को लजा रही थीं।

गजपतिसिंह और नरेन्द्र दोनों दिल्ली के एक प्रधान रास्ते से क़िले की ओर जाने लगे। उस समय दिल्ली पल्टनों से भरी थी। पैंतीस हज़ार सेना बराबर दिल्ली शहर के भीतर रहती थी। सैनिकों के पुत्र, कलत्र और नौकर आदि कितने ही लोग दिल्ली में मिट्टी और फ़ूस के घरों में रहते थे। इसलिए शहर विशेष कर ऐसे ही तृणकुटीरों से परिपूर्ण था। जिधर देखिए उधर अधिकांश तृणशालायें ही देख पड़ती थीं। चावल, दाल और कपड़े आदि की जितनी दूकानें थीं उनमें भी अधिकांश फ़ूस के ही घर थे। कोई साल ऐसा नहीं बीतता था जिसमें दो एक बार उस महल्ले में आग न लगती हो। हर साल

हज़ारों तृणागार क्षण भर में जलकर ख़ाक हो जाते थे। लाखों की पूँजी नष्ट हो जाती थी। नरेन्द्र सड़क के दोनों किनारे बहुधा ऐसे ही कच्चे घरों को देखता हुआ जाने लगा। मार्ग में छोटी छोटी दूकानों में तरह तरह की चीज़ें बिक रही थीं। सड़क पर लोगों की अपार भीड़ लगी थी। उसमें साधारण लोगों की ही संख्या अधिक थी। वे लोग सामान्य भेष से अपने अपने काम पर जा रहे थे। उस समय मध्य श्रेणी के व्यवसायी और अन्यान्य लोग जिस तरह ईंट के मकान बनाकर शहर को शोभायमान कर रहे थे, दो सौ वर्ष पूर्व यह बात न थी। तब और ही तरह के घरों से दिल्ली सुशोभित थी।

कुछ दूर आगे बढ़कर वे दोनों एक बहुत विस्तृत राजपथ पर पहुँचे। उस मार्ग के दोनों तरफ़ एक से एक बढ़कर आलीशान मकान देखने में आये। मनसबदार, क़ाज़ी, अमीर, उमरा, सेठ, महाजन और राजा-महाराजा आदि बड़े बड़े धनाढ्य लोगों के अत्यन्त सुन्दर महलों और अटारियों से राजपथ की शोभा सौगुनी बढ़ रही थी। नरेन्द्र ने ऐसी सजी हुई सुन्दर श्रेणीबद्ध अटारियाँ आज तक नहीं देखी थीं। अतएव वह उनके कोठों की शोभा देखकर दङ्ग हो रहा। वह दो-एक पग आगे चलता और फिर ठहरकर मकानों की शोभा देखने लग जाता। इसी तरह मकानों की शोभा देखता और गजपतिसिंह के साथ वार्तालाप करता हुआ वह जाने लगा।

कुछ देर बाद उन दोनों की नज़र प्रसिद्ध जुम्मा मसजिद के ऊपर पड़ी। भारतवर्ष में इसकी जोड़ की एक भी मसजिद न थी। भारतवर्ष ही क्या, दुनिया भर में भी शायद उसके जोड़ की मसजिद न थी। नरेन्द्रनाथ ने चकित होकर पूछा—सामने यह कैसी मसजिद नज़र आती है?

गजपतिसिंह—यह जुम्मा मसजिद है। सुना है, एक पहाड़ के ऊपरी हिस्से को समतल करके उसी पर यह मसजिद बनाई

गई है। यह बेशक़ीमत लाल पत्थरों की बनी है। इसके ऊपर सङ्गमर्मर के अत्यन्त सुन्दर तीन गुम्बज़ आकाश से बातें कर रहे हैं। बादशाह जब दिल्ली में रहते हैं, तब प्रतिशुक्रवार को इस मसजिद में नमाज़ पढ़ने आते हैं। बादशाह की सवारी जिस ठाट-बाट से निकलती है वह तो तुमने कभी देखी ही नहीं। देखोगे तो ज़िन्दगी भर न भूलोगे। क़िले से मसजिद तक चार पाँच सौ सिपाही क़तारबन्दी से खड़े होते हैं। उनके एक हाथ में बन्दूक़ और दूसरे हाथ में लाल रङ्ग की पताका फहराती रहती है। पाँच-छः सवार बराबर राजमार्ग की देख-भाल के के लिए आगे निकलते हैं। पीछे बड़ी धूमधाम से गाजे-बाजे के साथ बादशाह, रत्नजटित सोने की अम्बारी से सजे हुए हाथी पर सवार हो, बाहर निकलते हैं। उनके पीछे मुसाहब, मनसबदार मुसलमान सज-धज कर मसजिद को जाते हैं। किन्तु अब यहाँ देर तक रहने से क्या होगा। चलो, क़िले के भीतर चलकर बादशाह की इमारत देखें।

दूर ही से लाल पत्थर के बने हुए ऊँचे क़िले की अपूर्व शोभा देखकर नरेन्द्र का चित्त चकित हुआ। उस समय जो अन्यदेशीय लोग भारतवर्ष में आये थे उन्होंने दिल्ली के क़िले, बादशाही इमारतों, और संगमर्मर की मसजिद को संसार में अद्वितीय बतलाया है। क़िले के फाटक के सामने एक बहुत बड़ा मैदान था। उसमें एक हिन्दू राजा डेरा डाले क़िले के द्वार की निगरानी कर रहे थे। घुड़सवार और मुसाहब लोग इधर-उधर घूम-फिर रहे थे। कितने ही सिपाही क़िले से बाहर जा रहे थे और कितने ही बाहर से क़िले के भीतर आ रहे थे। विदेशी व्यवसायिगण अपना अपना सौदा लेकर क़िले के फाटक पर जमा हो रहे थे। और भी हज़ारों आदमी इधर-उधर जाते-आते दिखाई दे रहे थे।

फाटक के दोनों तरफ़ पत्थर के हाथी की दो मूर्तियाँ थीं।

उन पर दो मनुष्यों की प्रतिमूर्तियाँ सवार थीं। नरेन्द्र ने बड़ी उत्सुकता के साथ पूछा—यह किसकी मूर्ति है?

गजपतिसिंह—तुम हिन्दू हो और इन्हें नहीं पहचानते? ये दोनों राजपूत वीर-पुरुषों की मूर्तियाँ हैं। चित्तौर के जयमल्ल और पुत्त ने बादशाह अकबर के साथ युद्ध करके उस क़िले की रक्षा की थी। पीछे जब लड़ते लड़ते थक गये तब अधीनता स्वीकार न करके युद्ध में बड़ी बहादुरी दिखाकर वीर-गति को प्राप्त हुए। हमारे पितामह तिलकसिंह भी उसी युद्ध में मारे गये थे। हम उस युद्ध की कहानी बाल्यावस्था में पिता तेजसिंह के मुँह से सुना करते थे। पुत्त की माँ और पत्नी दोनों वीर-रमणी थीं। वे दोनों भी सम्मुख युद्ध में मारी गईं। उन लोगों की कीर्ति को चिरस्मरणीय करने के लिए बादशाह अकबरशाह ने ये दोनों मूर्तियाँ इस जगह स्थापित की थीं। कुछ देर ठहर-कर फिर वे बड़े गर्व के साथ बोले—सच पूछो तो राजपूत राजाओं की कीर्ति को चिरस्मरणीय रखने के लिए उनकी मूर्तियों की आवश्यकता नहीं, क्योंकि जितने दिन उनकी वीरता का गौरव रहेगा, उतने दिन राजपूतों की कीर्ति का लोप न होगा। राजपूताने के हर एक पहाड़ की चोटी पर राजपूतों की वीरता का यश छाया हुआ है। भारतवर्ष की प्रत्येक समुद्रवाहिनी नदी की तरङ्ग में राजपूतों की वीरता निनादित हो रही है।

इस प्रकार बातचीत करते हुए दोनों प्रधान मार्ग को अतिक्रमण कर क़िले में आये। इस पत्थर के क़िले के भीतर उन्होंने देखा—सड़क के दोनों किनारे बड़ी बड़ी अट्टालिकायें हैं जिनमें राजकर्मचारी काम कर रहे हैं। क़िले के बाहर फाटक के सामने जिस तरह हिन्दू राजगण क़िले की रक्षा कर रहे थे उसी तरह क़िले के भीतर भी मनसबदार प्रभृति द्वार की रक्षा कर रहे थे।

क़िले के भीतर नरेन्द्र और गजपतिसिंह ने बड़े बड़े

कारखाने देखे। राजा-महाराजों को जिन विचित्र वस्तुओं की आवश्यकता होती थी वे सब चीज़ें उन कारखानों में बनती थीं। कहीं रेशम तैयार होता था। कहीं भाँति भाँति के भूषण बन रहे थे। कहीं तसवीरें और पत्थर की मूर्तियाँ बन रही थीं। इसी तरह छाते, जूते आदि के अनेक कारखाने थे। भाँति भाँति के देशी कपड़ों के व्यवसायवालों के कारखाने अलग ही थे। दर्ज़ियों का सिलाई का कारखाना अलग ही था। कहने का मतलब यह कि उस समय देशोपयोगी कोई चीज़ ऐसी न थी जिसका कारखाना दिल्ली में न रहा हो। देश के जितने अच्छे अच्छे कारीगर थे वे लोग सबेरे से साँझ तक प्रतिदिन कारखानों में काम करते और पूरी तनख्वाह पाते थे। इससे दिल्ली में उस समय अच्छी अच्छी चीज़ें तैयार होती थीं और व्यवसाय दिन दिन उन्नति पर था।

उन कारखानों को देखते-भालते वे दोनों वहाँ जा पहुँचे जहाँ सङ्गमर्मर का बना हुआ जगत्प्रसिद्ध प्रासाद "दीवानेखास" था। उस प्रासाद की छत सोने से विभूषित थी और सूर्य की किरणों में झकाझक कर रही थी। प्रासाद के भीतर रत्नजटित स्वर्ण-सिंहासन के ऊपर बादशाह शाहजहाँ बैठे हैं। उनके चेहरे पर अब भी बीमारी का चिह्न कुछ कुछ दिखाई दे रहा है। वे अभी तक सम्पूर्ण रूप से नीरोग नहीं हुए हैं। उनके सिंहासन की दाहिनी ओर युवराज दारा बैठे हैं। उनका चेहरा रोब से भरा है। देखने में वे अत्यन्त सुन्दर हैं। बादशाह की बाईं ओर उनके पौत्र (दारा के पुत्र) सुलतान सुलेमान खड़े हैं। उनकी उम्र क़रीब पच्चीस वर्ष की होगी। क़द लम्बा है। बादशाह के पीछे छत्रधारी छत्र लिये खड़े हैं। सिंहासन के दोनों ओर दो आदमी चँवर डुला रहे हैं। सिंहासन के चारों ओर चाँदी की छड़ों का घेरा था। उस घेरे के बाहर राजा, मुसाहब, मनसबदार, सेनापति और भारतवर्ष के प्रधान प्रधान लोग शाही दरबार के

अनुरूप कपड़े पहने, हाथ जोड़े, धरती की ओर नज़र किये हुए खड़े थे। उससे कुछ अन्तर पर सामने की समतल भूमि ठसाठस लोगों से भरी थी। क्या अमीर, क्या ग़रीब, क्या हिन्दू, क्या मुसलमान, सभी को वहाँ जाकर बादशाह के दर्शन करने का अधिकार था। उस अनुपम प्रासाद के सदर फाटक के ऊपर यह यथार्थ ही लिखा था—"यदि भूमण्डल में स्वर्ग है, तो यही स्वर्ग है, यही स्वर्ग है, यही स्वर्ग है।"

बादशाह के सामने सबके पहले सुन्दर सुन्दर अरबी घोड़े लाये गये। बादशाह देखकर ख़ुश हुए और उन्हें ले जाने की आज्ञा दी। तदनन्तर बड़े बड़े दन्तुल हाथी बादशाह को दिखलाने के लिए लाये गये। वे हाथी सूँड़ उठाकर बादशाह को तसलीम करके चले गये। इसके बाद क्रमशः हिरन, बैल, भैंस, गैंड़, और बाघ आदि अनेक पशु दिखलाये गये। भाँति भाँति के पक्षियों और साथ ही उनके चमत्कार को भी बादशाह ने देखा। इसके बाद हाथ में बर्छा लिये घुड़सवार सेना और उसके पश्चात् कई सौ सुशिक्षित पैदल सैनिक बादशाह के सम्मुख होकर चले गये। उन लोगों की वीरता के मद से भरी हुई चाल से धरती काँप उठी।

यह काम हो जाने पर बादशाह लोगों की दरख़्वास्त लेने लगे। क्या छोटे क्या बड़े, सभी लोग भारतवर्ष के बादशाह शाहजहाँ के निकट आकर अपना अपना दुःख सुनाने लगे। बादशाह उनकी दरख़्वास्त पर मुनासिब हुक्म देने और प्रार्थियों का दुःख दूर करने लगे। बादशाह ने जिस विषय पर जो राय ज़ाहिर की उसे जितने सभासद् थे सभी ने सराहा और बादशाह की न्यायपरता पर धन्यवाद दिया।

दो घण्टे में राजसम्बन्धी काम ख़तम हो गया। दरबार बरख़ास्त हुआ। शाहज़ादा और प्रधान प्रधान मुसाहबों को साथ ले बादशाह गुसलख़ाने को गये। गुसलख़ाना केवल

हाथ-मुँह धोने ही के लिए न था प्रत्युत वहाँ प्रधान प्रधान मन्त्रियों के साथ बैठकर बादशाह राजसम्बन्धी विषयों पर गुप्त विचार करते थे।

नरेन्द्र ने गुसलखाने के पीछे की ऊँची दीवार देखी। उस दीवार के भीतर बहुत से बड़े बड़े आलीशान मकान हैं। गजपतिसिंह ने कहा—इस दीवार के दूसरी तरफ़ बेगमों के रहने के लिए अलग अलग महल हैं। सुना है, उन महलों में बड़ी विचित्रता है। सभी महल कारीगरी के नमूनों से भरे हैं। हर एक बेगम का महल संगमर्मर का/बना है जिसके चारों ओर उपवाटिका लगी है। उस वाटिका में कहीं कहीं उपवन और लताभवन की शोभा चित्त को चुराये लेती है। गरमी के मौसम में दिन को रहने के लिए कई एक सुन्दर तहखाने बने हैं और रात को सोने के लिए छत के ऊपर खस की कोठरी बनी है। किन्तु बादशाह के सिवा अन्तःपुर की शोभा देखने का सौभाग्य दूसरे पुरुष को कहाँ। अन्तःपुर में अन्य पुरुषों को प्रवेश करने का अधिकार नहीं है। किसकी मजाल जो अन्तःपुर की ओर एक बार झाँके भी; भीतर पैर रखना तो दूर की बात है।

नरेन्द्रनाथ को गत रात्रि की सब बातों का स्मरण हो आया। उसको ऐसा जान पड़ा जैसे उसके नेत्रों ने बेगमों के विचित्र महलों की अनिर्वचनीय शोभा देखी हो। किन्तु उसने बीती रात का अद्भुत वृत्तान्त गजपतिसिंह से नहीं कहा और ख़ुद भी वह उस वृत्तान्त की सचाई का निश्चय नहीं कर सका।

चौदहवाँ परिच्छेद

तातार-देश का पागल बालक

ये आदमी किले से बाहर हो सामने के मैदान में आ रहे हैं। वह स्थान अब भी लोगों से भरा हुआ है। क्या अमीर, क्या ग़रीब, सभी लोग उस मैदान में दिखाई दे रहे हैं। कोई पालकी पर, कोई हाथी पर और कोई घोड़े पर सवार हो इधर-उधर आते-जाते हैं। सैकड़ों क्या हज़ारों व्यवसायी, दूकानें लगा कर अमीर और ग़रीब सभी के लायक भाँति भाँति की चीज़ें बेच रहे हैं। उन चीज़ों को खरीदने या देखने के लिए चारों ओर से झुंड के झुंड लोग आ रहे हैं और उस मेले में जिसकी आँखें जिधर उलझ गईं वह उधर ही खड़ा होकर तमाशा देखने लग जाता है। कोई गा-बजा कर, कोई नाचकर पैसा बटोर रहा है। कहीं बाज़ीगरी का खेल-तमाशा हो रहा है। कहीं सँपेरे भाँति भाँति के भयङ्कर साँप दिखलाकर दर्शकों के चित्त को चकित कर रहे हैं। कितने ही व्यक्ति अपने को ज्योतिषी बताकर अपना पुराना कपड़ा बिछाये बैठे हैं तथा पञ्चाङ्ग दिखाकर फलाफल कहने के लिए लोगों को अपनी ओर बुला रहे हैं। कोई सामुद्रिक विद्या के बल से हस्तरेखा और कपाल-रेखा देखकर भूत, भविष्य और वर्तमान का फल लोगों को सुना सुनाकर दक्षिणा वसूल कर रहे हैं। हस्तरेखा देखने-वालों के निकट ज़्यादा भीड़ है। अच्छे अच्छे घर की स्त्रियाँ भी घूँघट डाले वहाँ आती हैं और एक पैसा दक्षिणा देकर अपना हाथ दिखला लेती हैं।

नरेन्द्र ने उन सबके बीच एक अपूर्व ज्योतिषी को देखा। उस ज्योतिषी की अवस्था चौदह वर्ष से अधिक न होगी। उसका शरीर कोमल और रङ्ग अत्यन्त गौर था। वह सूर्य के आतप में लाल हो गया है। उसके नेत्र, गाल और कन्धों पर जटा बिखरी पड़ी हैं। यद्यपि जटा से आँखें कुछ कुछ ढक सी गई हैं तथापि आँखों से तेज निकल रहा है। सिर से पैर तक सारा अङ्ग काले कपड़े में छिपा है, केवल मुँह बाहर है। कमर में एक सोने का बहुमूल्य कमरबन्द धूप में झकाझक कर रहा है। यह लड़का तातारदेशीय मुसलमान है। बिना किसी से कुछ लिये ही हाथ देखकर भूत, भविष्य बतला रहा है।

तातारदेशीय बालक की सुन्दर मुखाकृति देखकर ही कुछ लोग उसके पास जाते हैं और हाथ दिखलाते हैं। गजपतिसिंह और नरेन्द्र भी उसके पास गये। पहले गजपतिसिंह ने हाथ दिखलाकर पूछा—हम आज ही साँझ को दिल्ली छोड़कर कहाँ जाना चाहते हैं। बतलाओ तो कहाँ जायँगे।

तातार-बालक ने गजपतिसिंह का चेहरा और वस्त्र भली भाँति देखकर कहा—महाराज यशवन्तसिंह नर्मदा के किनारे पर गये हैं। तुम भी वहीं जाओगे।

गजपतिसिंह ख़ूब ज़ोर से हँसकर बोले—महाराज यशवन्तसिंह औरंगज़ेब के साथ युद्ध करने गये हैं, यह बात दिल्ली के आबाल-वृद्ध सभी जानते हैं। हम राजपूत हैं, हमारा सैनिक लिबास देखकर इतना तो सभी कह सकते हैं। क्या इससे अधिक बात कहने की विद्या तुम्हारे पास नहीं है?

तातार-बालक अपनी तेजःपूर्ण दृष्टि को गजपतिसिंह के मुँह पर स्थिर करके कुछ देर पीछे सिर हिलाकर और अपने मुँह पर से जटा को पीछे की ओर हटाकर बोला—राजपूत वीर, मैं और हाल भी कह सकता हूँ। सुनो, औरंगज़ेब के हाथ से सभी राजपूत सैनिक मारे जायँगे। तुम महाराज से कह देना

कि वे अपने लिए एक .खूब तेज़ घोड़ा रख छोड़ें, नहीं तो उन्हें भागने का अवसर नहीं मिलेगा। सात हज़ार राजपूतों में से सात सौ के भी बचने की सम्भावना नहीं। वीर, उस युद्ध में तुम ज़रूर खेत रहोगे।

गजपतिसिंह बेशक साहसी योद्धा थे, किन्तु तातार-बालक के मुँह से यह गाम्भीर्यपूर्ण बात सुनकर वे सहम गये। क्षण-मात्र में उनका वह भाव बदल गया। उन्होंने गम्भीरतापूर्वक कहा—क्या हानि है। यदि विधाता को वही मंजूर होगा तो वही सही। यह शरीर यदि महाराज के युद्ध में काम आवे तो राजपूत के लिए इससे बढ़कर गौरव की बात और क्या होगी? युद्ध में प्राण दे देने से बढ़कर विशेष महत्त्व का काम राजपूत और नहीं जानते।

कुछ देर सभी चुप रहे। फिर नरेन्द्र ने अपना हाथ दिखला-कर पूछा—यदि तुम सचमुच हाथ देखना जानते हो तो बतलाओ, मैं कल रात्रि में कहाँ था, और मैंने क्या देखा था।

तातारवासी नजूमी बड़ी देर तक चुपचाप धरती की ओर देखता रहा। फिर धीरे धीरे नरेन्द्र की ओर देखकर बोला—एक यवनी (मुसलमानी) तुम्हारी प्रेमिका है। कल रात्रि में तुमने उसी को देखा था।

गजपतिसिंह हँस उठे। उनको हँसते देख वहाँ जितने लोग थे सभी हँसने लगे। सिर्फ़ नरेन्द्र नहीं हँसा। तातारी की बात सुनकर वह मारे आश्चर्य के क्षुब्ध हो रहा।

नरेंद्र को क्षुब्ध देखकर तातारी उसे एक तरफ़ बुला ले गया और धीरे धीरे उससे बोला—दिल्ली में तुम्हारे ऊपर बहुत बड़ा सङ्कट आनेवाला है, क्या तुमको यह मालूम नहीं? तुम आज ही दिल्ली से चल दो, आज ही इस मित्र (गजपतिसिंह) के साथ नर्मदा के किनारे चले जाओ। यह पागल भी उसी ओर जायगा। यदि तुम आज्ञा दोगे तो तुम्हारे साथ जायगा। यह पगला

तुम्हारा कुछ अनिष्ट न करेगा, बल्कि विपत्ति से तुमको बचाने का प्रयत्न करेगा।

यह सुनकर नरेन्द्र और भी विस्मित हुआ। "यह बालक कौन है? यह बालक क्या सचमुच भूत, भविष्य और वर्तमान की बातें कह सकता है? इसने कल रात की बात कैसे जानी? जो हो, है यह जरूर मेरा हितचिन्तक। सम्भव है, विपत्ति से यह मेरा त्राण कर सके।" यह सोचकर नरेन्द्र उसे अपने पास रखने को राज़ी हुआ।

उसी दिन सन्ध्या को गजपतिसिंह, नरेन्द्र और तातारी बालक तीनों दिल्ली त्यागकर नर्मदा की ओर चले।

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

राजा यशवन्तसिंह का शिविर

सन् १६५८ ईसवी के वसन्तकाल में प्राचीन उज्जैन नगर और सिप्रा नदी की अपूर्व शोभा देखकर किसका चित्त मोहित न होता था ? चन्द्रमा का उदय हुआ है। उसकी स्वच्छ चाँदनी में सिप्रा नदी के दोनों किनारे, जहाँ तक दृष्टि जाती है, सफ़ेद शिविर ही शिविर देख पड़ते हैं। एक ओर राजा यशवन्तसिंह और उनके साथी सेनापति कासिमखाँ की असख्य सेना उन खेमों में विश्राम कर रही है। और दूसरी ओर सिप्रा नदी के अपर पार्श्व में एक पहाड़ के ऊपर औरंगज़ेब और मुराद का मुग़ल सैन्यदल डेरा डाले पड़ा है। बीच में सिप्रा नदी कलकल शब्द करती हुई शिलाराशियों के ऊपर से होकर निरन्तर बह रही है। मानो वह मुग़लों और राजपूतों के युद्ध की आयोजना देखकर निर्भीकभाव से उपहास करती हुई चली जा रही है। वहाँ से दूर भारत भूमि की मेखला के समान विन्ध्य पहाड़ चन्द्रमा के प्रकाश में कुछ कुछ दिखाई दे रहा है। कल भीषण युद्ध होगा। आज दोनों ओर सभी लोग निस्तब्ध हैं। केवल बीच बीच में पहरेदारों का गम्भीर स्वर उस निस्तब्धता को भङ्ग करता है और बहुत दूर तक सुन पड़ता है तथा शृगालों का चीत्कार नदी के किनारे और पहाड़ की तराई में प्रतिध्वनित होकर विलीन हो जाता है।

एक शिविर में नरेन्द्र सो रहा है किन्तु युद्ध की चिन्ता भाँति भाँति का स्वरूप धारण कर स्वप्न-रूप से उसके हृदय में

जाग्रत हो रही है और उसके साथ साथ कितनी ही पुरानी बातें भी उदित हो रही हैं। स्वप्नावस्था में नरेन्द्र को सिप्रा नदी का कलकल शब्द भागीरथी का शब्द जान पड़ा। उस भागीरथी के किनारे, उपवन से घिरा हुआ, वह उच्च प्रासाद देख पड़ा। उसने गङ्गा के किनारे बालू का मैदान देखा। उस मैदान में दो बालक खेल रहे हैं और एक बालिका खड़ी होकर कोमल स्वर में कुछ गा रही है। यह प्रेम की मूर्ति कौन है? निःसन्देह किसी समय गङ्गा के निकटवर्ती उपवन में तीनों बालक सन्ध्या-समय खेलते थे, किन्तु समय के फेर से वह बात अब स्वप्नवत् प्रतीत हो रही है।

स्वप्न परिवर्तित हुआ। भागीरथी का कलकल शब्द नहीं, यह तो किसी रमणी के गाने की ध्वनि सुनाई दे रही है। रमणी क्या है मानो साक्षात् अप्सरा है। एक बहुत ऊँचे प्रासाद के झरोखे पर बैठी हुई एक अप्सरा गान कर रही है। अप्सरा नहीं, यह तो ज़ुलेखा सामने खड़ी है। उसका चाँद सा मुखड़ा काले बादल जैसे केशों में कुछ कुछ ढका सा अपूर्व शोभा दे रहा है। उसकी आँखों से आँसू टपक रहे हैं।

स्वप्न की अवस्था फिर बदल गई। यह ज़ुलेखा नहीं, यह वही तातारदेशी बालक गीत गा रहा है। जो किसी के साथ व्यर्थ प्रेम करके, प्रेम का बदला न पाने के कारण, दीवाना होकर देश-देश में घूम रहा है, यह उसी का गाना है। गाना सुनते सुनते नरेन्द्र की नींद उचट गई। वे शिविर के बाहर आये। आधी रात का समय है। सर्वत्र सन्नाटा छाया है। उस सन्नाटे में केवल हवा की सनसनाहट सुन पड़ती है। चारों ओर चाँदनी छिटकी हुई है। उस चाँदनी में नदी, पहाड़, शिविर और मैदान की एक विचित्र शोभा दिखाई दे रही है। वह बदनसीब पागल तातार-बालक शिविर के द्वार पर बैठकर उच्च स्वर से गा रहा है और तान ले रहा है। वह सम स्वर से मिलता हुआ गान

वायु से मिलकर चारों ओर आकाश-मण्डल में फैल रहा है।

नरेन्द्र ने डबडबाई हुई आँखों से उस बालक की ओर देखा, और उसके नयनों के आँसू पोंछकर पूछा—क्या तुम सचमुच प्रेम के ही लिए पागल हुए हो? क्या तुम्हारे हृदय में कोई गहरी चोट लगी है? यदि यह सच है तो कहो मैं तुम्हारे दुःख का साथी होने को तैयार हूँ। जी खोलकर मुझे सब बातें कह सुनाओ।

बालक टकटकी बाँधकर नरेन्द्र के मुँह की ओर देखने लगा। नरेन्द्र को देखकर न मालूम उसका बदन क्यों काँपने लगा। कुछ देर बाद हृदय के वेग को रोककर उसने धीरे धीरे करुणा-भरे स्वर में कहा—क्षमा कीजिए। मैं पागल हूँ। जब जो जी में आता है, गाता हूँ।

नरेन्द्र ने कई तरह से समझा-बुझाकर बार बार उसके मानसिक दुःख का, और इतनी थोड़ी सी उम्र में फ़क़ीरी लेने का कारण पूछा। बालक ने उसका कुछ उत्तर न दिया। सिर्फ़ इतना ही कहा—मैं पागल हूँ।

जब थोड़ी सी रात बाक़ी रही तब नरेन्द्र युद्ध का सामान दुरुस्त करके अपने मित्र गजपतिसिंह के डेरे में गया। वहाँ जाकर उसने देखा, वे भी हर्बे-हथियारों को ठीक कर रहे हैं। अपनी ढाल-तलवार, बर्छा और कवच आदि को साफ़ कर रहे हैं। यद्यपि उनके सभी अस्त्र चाँदी से उजले हैं तथापि वे उन अस्त्रों को और भी उज्ज्वल कर रहे हैं। यह देखकर नरेन्द्र को कुछ आश्चर्य्य हुआ। पीछे उसने गजपतिसिंह की शय्या की ओर देखा, बिछौना ज्यों का त्यों पड़ा था। वे बिछौने पर लेटे तक नहीं। सारी रात जागते ही रहे। रात भर वे हथियारों को ही साफ़ करते रहे। जगने से उनके चेहरे पर कुछ फीकापन सा आ गया है। आँखों में कुछ मलिनता सी आगई है। उनकी दशा ऐसी क्यों हो गई है? नरेन्द्र कई दिनों तक गजपतिसिंह

के साथ रह चुका है। गजपतिसिंह के मन का जो भाव हो चुका था उससे उनके मुखमालिन्य का कारण कुछ थोड़ा सा नरेन्द्र को मालूम था। इसलिए उसने समझा कि जब से तातारी बालक ने उनका हाथ देख कर भविष्यवाणी कही है तभी से गजपतिसिंह के जी में यह बात बैठ गई है कि वे उज्जैन की लड़ाई में अवश्य मारे जायँगे। मालूम होता है, इसी से रात भर वे स्वर्गयात्रा की तैयारी में लगे रहे। उन्हें सोने का अवसर नहीं मिला।

पाठकगण, क्या आप गजपतिसिंह को भीरु समझ रहे हैं? राजपूत प्रायः सभी स्वभावतः निर्भीक और साहसी होते हैं, उस समय तेजसिंह के पुत्र गजपतिसिंह से बढ़कर युद्ध में कोई साहसी न था, तथापि कल के युद्ध में अवश्य मृत्यु होगी, यह जानकर उस वीर-शिरोमणि साहसी के ललाट पर चिन्ता का चिह्न कुछ दिखाई देने लगा है। योद्धागण यौवन के मद से मत्त होकर, जीवन के सुख में मग्न होकर, युद्ध के उत्साह से उमँग कर और विजय की आशा से आश्वस्त होकर मृत्यु की चिन्ता को चित्त से हटाते हैं। युद्ध को वे लोग एक प्रकार का खेल समझते हैं। जैसे सब लोग मरते हैं वैसे वे भी एक दिन जरूर मरेंगे। इसमें क्या हानि है। किन्तु कल मरेंगे, यह ज्ञान हृदय को बिना कँपाये नहीं रहता। वज्रपात से कहीं बढ़ कर वज्रपात का ज्ञान दुःसह होता है। अपनी मृत्यु का स्मरण होने से किसका मुँह उदास नहीं होता? गजपतिसिंह उस समय और लोगों की तरह गणना की बात सच समझते थे। आज की लड़ाई में वे मरेंगे, यह उन्हें दृढ़ विश्वास था। मृत्यु के लिए सुसज्जित होकर उन्होंने सारी रात जाग कर बिताई है। अस्त्रों को साफ़ करना तो केवल समय बिताने का एक बहाना-मात्र था।

नरेन्द्र को आते देख गजपतिसिंह ने झट उठकर उसका हाथ

पकड़ा और मुस्करा कर कहा—देखो, खूब अच्छी तरह ध्यान देकर देखो, ये अस्त्र सब साफ़ हो गये या इनमें अभी कुछ कसर है ?

नरेन्द्र—क्या लड़ाई में आज आप जरूर ही जायँगे ? तातारवासी बालक ने जो बात कही थी वह याद है न ?

गजपतिसिंह—सम्मुख युद्ध में राजपूत वीर कभी पीछे की ओर घूम कर भी नहीं देखते। वे केवल शत्रुओं को मार कर मरना जानते हैं। हमारे पिता तेजसिंह ने हमें ऐसा ही उपदेश दिया था।

ज़रा ठहर कर गजपतिसिंह ने फिर कहा—नरेन्द्र, किसी युद्ध में हमने महाराजा यशवन्तसिंह का कुछ विशेष उपकार किया था। उससे प्रसन्न होकर उन्होंने हमें एक मोतियों की माला दी थी। तब से हरेक लड़ाई में हम इस माला को पहन लेते हैं। आज के युद्ध में तुम बचे रहोगे। लो, यह मोतीमाला राजा को दे देना और उनसे कहना—देश में हमारी दो सन्तानें हैं जो अभी बहुत छोटी हैं। उन अभागों के माँ नहीं है। महाराज से कहना, उन बच्चों के ऊपर कृपादृष्टि रक्खें। रघुनाथ भी यथासमय राजा की आज्ञा से पिता की भाँति संग्राम में जूझ कर प्राण देने को समर्थ होगा। इससे अधिक मङ्गल की कामना उसके पिता के हृदय में नहीं है।

नरेन्द्र चुप हो रहा। उसकी आँखों से दो बूँद आँसू टपक पड़े। गजपतिसिंह की आँखों में नाम-मात्र को भी आँसू न थे।

सहसा जुझाऊ बाजे बजने लगे। औरंगज़ेब सिप्रा नदी पार होने का उद्योग कर रहे हैं। गजपतिसिंह अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित होकर शिविर के बाहर आये और झट घोड़े पर सवार हो तीर के वेग से नदी के किनारे चले। नरेन्द्र भी उनके पीछे पीछे चला।

सोलहवाँ परिच्छेद

मुग़ल-सेना का शिविर

क्षत्रिय-सेना के शिविर का हाल पूर्व परिच्छेद में पाठक पढ़ चुके हैं। अब एक बार वे मुग़लसेना के शिविर का भी दर्शन कर लें।

औरंगज़ेब पहले ही वहाँ पहुँच कर मुराद के आने की आशा कर रहा था। दो-तीन दिन पीछे मुराद भी अपना दल बल लिये औरंगज़ेब से आ मिला। मुराद के आने के पहले यदि यशवन्तसिंह औरंगज़ेब पर आक्रमण करते तो उसको भागने का रास्ता न सूझता। कोई कोई इतिहास-वेत्ता कहते हैं कि यह बात यशवन्तसिंह नहीं जानते थे कि औरंगज़ेब के पास थोड़ी सी सेना है, इसी से उन्होंने औरंगज़ेब पर आक्रमण नहीं किया। किसी किसी का कथन है कि महापराक्रमी राजपूत सेनापति (यशवन्तसिंह) यह जानते तो थे किन्तु शत्रु की थोड़ी सी सेना के साथ युद्ध करना नीति-विरुद्ध समझ कर उन्होंने आक्रमण करना उचित नहीं समझा। वे प्रतीक्षा कर रहे थे कि पहले शत्रुसेना ही उन पर आक्रमण करे।

आज बहुत दिनों बाद औरंगज़ेब और मुराद, दोनों भाइयों से भेंट हुई है। कल युद्ध होगा। विजय का नक्क़ारा बजेगा। विजय-शब्दों से देश-देशान्तर कम्पायमान होगा। बहुत बढ़िया रेशमी कपड़ों से मढ़े हुए शिविर में कई मोमी शमादान जल रहे हैं। भाँति-भाँति की स्वादिष्ट भोजन-सामग्रियाँ थालियों में

रक्खी हुई है। दोनों भाई (औरंगज़ेब और मुराद) खाना खाने बैठे हैं। अप्सराओं से भी बढ़कर सुन्दरी नवयौवना नर्तकियाँ नाच-गाकर और हाव-भाव दिखला कर दोनों शाह-ज़ादों का मनोरञ्जन कर रही हैं। मुराद का उन्नत ललाट, विशाल वक्षःस्थल और वीरता से भरी आकृति दर्शनीय है। हृदय भी उसका कपट-शून्य है। औरंगज़ेब का चेहरा बनावटी भाव से प्रसन्न दीख पड़ता था। उसकी आँखें बड़ी तेज़ और तीव्रता से भरी हुई थीं। चित्त हमेशा चिन्ताओं से घिरा रहता था तथापि वह कैसी मन-लुभावनी मीठी हँसी हँस रहा है, किस नम्रता और सम्मान से मुराद के साथ वार्तालाप कर रहा है जो सुनते ही बन पड़ता है। मानो भाई को देख कर वह मारे .खुशी के फ़ूले अंग नहीं समाता; मानो भाई (मुराद) के कार्यसाधन के सिवा संसार में उसका कोई दूसरा कर्तव्य नहीं है और न भाई की कार्यसिद्धि से बढ़कर उसके लिए कोई आनन्द का विषय है।

दोनों भाइयों के बड़ी .खुशी से भोजन कर चुकने पर नौकरों ने भाँति-भाँति के फल और शराब उनके सामने ला रक्खी। रंडियों ने फिर गाना प्रारम्भ किया। मधुर तान-तरङ्ग से शिविर के भीतर फिर आनन्द का स्रोत उमड़ चला। चोटी में गुथे हुए हीरे की ज्योति से कटाक्ष-दृष्टि की ज्योति मिलने लगी और सुललित गान के साथ मधुर मुसकुराहट तो नवयुवक मुराद के हृदय पर ग़ज़ब ढाने लगी। उन वाराङ्गनाओं का नाच देखकर मुराद मोहित हो गया। उसका दिल हाथ से जाता रहा। आखिर औरंगज़ेब का इशारा पाकर वेश्यायें वहाँ से चली गईं।

औरंगज़ेब ने सोने के गिलास में शराब ढाल कर मुराद के हाथ में दी और कहा—आज हमें बहुत दिनों के बाद अपने जी का हौसला पूरा करने का अवसर मिला है। हम आज अपने जीवन को सार्थक समझते हैं।

मुराद—आपके समान निष्कपट भाई हम कहाँ पावेंगे। आज आपसे मिल कर हम अपने को बहुत बड़भागी मानते हैं। यह गिलास आप ही लीजिए।

औरंगज़ेब—"माफ़ कीजिए, आप इस बात को बख़ूबी जानते हैं कि हम संसारी सुख की इच्छा नहीं रखते। हम इतना ही चाहते हैं कि आपके सदृश वीर पुरुष को पिता के सिंहासन पर बैठे देख कर अपनी आँखों को तृप्त करें। इसके सिवा हम और कुछ नहीं चाहते। यदि पैग़म्बर ने हमारे इस इरादे को पूरा किया तो हम बड़ी .ख़ुशी से फ़क़ीरी लेकर मक्के चले जायँगे।" यह कह कर उसने शराब के प्याले को मुराद की ओर बढ़ाया।

मुराद—आप सचमुच दिल के बहुत साफ़ और सच्चे हैं, नहीं तो आप हमारे लिए इतनी कोशिश क्यों करते ?

औरंगज़ेब—आपके लिए कोशिश न करेंगे तो करेंगे किसके लिए ? आपके सिवा तैमूरलंग के सिंहासन पर बैठने के योग्य दूसरा कौन है ? शुजा ऐय्याश और डरपोक है। यह तैमूर के सिंहासन को कलङ्कित करेगा। दारा है आत्माभिमानी, महामूर्ख और हिन्दुओं का पक्षपाती। तैमूर के सिंहासन को वह काफ़िर कलुषित कर देगा। उन दोनों के सिंहासनारूढ़ होने की अपेक्षा हिन्दुस्तान फिर हिन्दुओं के हाथ में चला जाय तो बेहतर है। तैमूर का नाम मिट जाय, यह मंज़ूर है, पर उन दोनों के लिए हम तो हर्गिज़ लड़ाई न करेंगे। तब जिनका साहस असीम है, जिनका यश सारे भारतवर्ष में फैला हुआ है, जो मुग़ल-सिंहासन पर बैठने के सर्वथा सुयोग्य हैं, जो मुग़ल ख़ानदान के एक-मात्र गौरव-स्वरूप हैं, उनके लिए हम अपना प्राण तक देने को तैयार हैं। हम आपकी यह कुछ बड़ाई नहीं करते। जब आपका मुँह देखते हैं तब हमें यही जान पड़ता है जैसे आपके मस्तक में बादशाह शब्द लिखा हो। आपकी चौड़ी छाती और विशाल

बाहुओं में योद्धा शब्द अङ्कित है। हम अपने जीवन को धन्य मानते हैं। हम अपने भाग्य की बड़ाई करते हैं कि ऐसे वीर पुरुष के कार्य-साधन में हम प्रवृत्त हुए हैं।—यह कह कर औरंगज़ेब ने फिर एक प्याले को शराब से भर कर मुराद के हाथ में दिया।

मुराद—हमें आपका पूरा भरोसा है। हम आपकी इन बातों से बहुत ख़ुश हुए। कल ज़रूर लड़ाई होगी। सेना तैयार है।

औरंगज़ेब—हम तो तीन चार दिन से यहां डेरा डाले पड़े हैं, किन्तु युद्ध करने में हम अब भी अनभिज्ञ हैं। हिम्मत न पड़ती थी कि अकेले युद्ध करें। आप हमारे बग़ल में खड़े रहेंगे तो हम अपने को सर्वदा सुरक्षित समझेंगे और उस समय युद्ध में हमारा साहस दुगुना बढ़ जायगा।

मुराद ऐसा मूर्ख और आत्माभिमानी था कि वह ख़ुशामदी बातों को भी सत्य समझ लेता था। परिमाण से अधिक मद्यपान करने के कारण वह इस समय और भी ज्ञानशून्य हो रहा था। औरंगज़ेब के मुँह से अपनी प्रशंसा सुन कर वह आनन्द से गद्‌गद होकर बोला—"भाई साहब! आप कुछ सोच न करें, कुछ दिन में आप भी युद्ध में निपुण होंगे। युद्ध का भार तब तक हमारे ऊपर रहने दें। हम, हम शत्रु से नहीं डरते। हम संसार में किसी का भरोसा नहीं रखते। हम तो अपने साहस और इस तलवार के भरोसे रहते हैं।" यह कह कर मुराद ने म्यान से तलवार खींच ली। चिराग़ की रोशनी में तलवार बिजली की तरह चमक उठी। वह फिर तलवार को म्यान में रखने लगा किन्तु मद्यपान करने से उसकी दृष्टि स्थिर नहीं थी, इससे तलवार को वह म्यान में नहीं रख सका। तलवार उसके हाथ से छुटकर धरती पर गिर पड़ी। औरंगज़ेब ने हँसी रोक कर मदिरा का एक प्याला उसे और पीने को दिया। मुराद ने उस प्याले को भी खाली कर दिया।

औरंगज़ेब ने कहा—भाई, अब हम जाते हैं, कल युद्ध के समय फिर आपके दर्शन होंगे।

"अच्छा, जाते हो तो जाओ, आज हम जी से तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हैं। एक बार तुम्हें गले से लगा लें"—यह कह कर मुराद आलिङ्गन करने को उठा, परन्तु अधिक मद्यपान के कारण तलमला कर धरती पर गिर पड़ा और बेहोश होगया।

मुराद की यह अवस्था देख कर औरंगज़ेब के मुँह का भाव बदल गया। भाई को कुछ देर पहले जो प्रसन्न मुख वह दिखला चुका था वह केवल उसकी वञ्चकता थी। मुराद को बेहोश देख कर वह उसकी मूर्खता पर हँसने और धीरे धीरे उस शिविर में टहलने लगा। बीच बीच में सहसा ठहर कर वह सामने स्थिर दृष्टि से देखने लग जाता था, जैसे उसे कोई अपूर्व वस्तु दीख पड़ती हो, और फिर टहलने लगता था। कभी तो उसके होठों पर मुसकुराहट की छटा लक्षित होती थी, कभी मुँह पर कठोर भाव झलकने लगता था और भौंहें सिकुड़ जाती थीं।

टहलते टहलते औरंगज़ेब एक जगह खड़ा होकर एक ओर स्थिर दृष्टि से ताकने लगा और आप ही आप लड़खड़ाती हुई ज़बान से यों बोलने लगा,—अहा, चमकीला मणिमय मुकुट, रत्नजटित सिंहासन और इतना बड़ा भारत प्रदेश पिता के हाथ से चला जा रहा है। लेने की घात में सभी लगे हैं। पर लेगा कौन? दारा, दारा! ख़बरदार! तुम साहसी हो, बलवान हो, और चतुर भी हो; किन्तु समझ रक्खो, हम तुमसे किसी अंश में न्यून नहीं हैं,—हम भी कमज़ोर हाथ से तलवार का क़ब्ज़ा नहीं पकड़ते, रास्ता छोड़ दो, नहीं तो हम तलवार के ज़ोर से रास्ता साफ़ करेंगे। तुम अपने को बहुत बड़ा समझते हो, तुम घमण्डी हो, किन्तु तुमसे बढ़कर कहीं घोर घमण्ड और दृढ़तर उद्देश्य इस मक्कार की मीठी हँसी के भीतर छिपा हुआ है।

इस वकव्रती के हृदय में क्या क्या भाव भरा हुआ है, वह तुम क्या जानो ? मुराद, तू अपने को बहुत बड़ा वीर, और साहसी समझता है। क्या तू ही बादशाही तख़्त पर बैठने लायक़ है ? तू ही सिंहासन पर बैठेगा ? तो सूअर जिस तरह कीचड़ में लोटता है उस तरह तू धरती पर क्यों लोट रहा है ? जंगली सूअर क्या तुमसे कम साहसी है ? मूर्ख ! कल युद्ध होगा. आज शराब पीकर रण्डियों की तिरछी नज़र से घायल होकर धरती पर पड़ा है। तू सिंहासन पर बैठ कर रण्डियों की गुलामी करेगा, या बादशाहत ! ठहर, जब तक तुझसे काम लेना है तब तक तो तुझे हम किसी तरह उलझाये रहेंगे; जब तुझसे हमारा मतलब निकल जायगा तब पैर की ठोकर मार कर तुझे इसी तरह धरती पर दूर फेंक देंगे। कल युद्ध होगा. कौन जानता है कि किसके भाग्य में क्या बदा है ? पिता के हाथ से बादशाहत छीन लेने के लिए हम प्रवृत्त हुए हैं। हमने बड़े भयङ्कर काम में हाथ डाला है। उद्योग की सीमा तक पहुँच चुके हैं, अब लौट भी नहीं सकते। जैसे होगा, हथियार के हाथ कण्टकमय पथ को साफ़ करेंगे। मालूम होता है, उज्जैन से आगरे तक का मार्ग मनुष्यों के लोहू से भर जायगा। हम जो कुछ प्रतिज्ञा कर चुके हैं उससे अब कदापि विचलित न होंगे। या तो बादशाही ताज से अपने सिर को सुशोभित करेंगे या कल अपने हृदय के रक्त से सिप्रा नदी के जल को लाल कर देंगे।

सत्रहवाँ परिच्छेद

उज्जयिनी का युद्ध

उज्जैन की लड़ाई सन १६५८ ई० के वैशाख महीने में हुई। मुराद और औरंगज़ेब की सेना सिप्रा नदी के पार होने का उद्योग करने लगी, किन्तु यह कुछ साधारण बात न थी। औरंगज़ेब ने सेना को पार ले जाने का बड़ा बड़ा ढंग लगा रक्खा था, बड़ी बड़ी तरकीबें लगा रक्खी थीं। उसने ऊँची जगह में तोपें लगा कर शत्रुओं का आगे बढ़ना रोका और अपने सैन्य को नदी पार हो जाने की आज्ञा दी। दुश्मनों ने भी पहले ही से तोपें लगा रक्खी थीं और उनके द्वारा शत्रुओं की सेना के आने का रास्ता रोक रक्खा था। दोनों ओर से दनादन तोपें चलने लगीं। दोनों ओर जुझाऊ बाजे बजने लगे। दोनों दलों में घोर युद्ध ठन गया। यशवन्तसिंह युद्ध में बड़ी बहादुरी दिखाकर मुगल-सेना की गति रोकने लगे किन्तु उनके साथी सेनापति कासिमखाँ ने जी लगाकर युद्ध न किया। वह युद्ध में बड़ी लापरवाही दिखलाने लगा। उस समय के इतिहासलेखक सन्देह करते हैं कि उसने औरंगज़ेब से विशेष धन पाकर गोले-बारूद को छिपा रक्खा था। इस कारण उसकी तोपें शीघ्र ही मौन साध बैठीं। इस अवस्था में दुश्मन की तोपों के सामने युद्ध करना यशवन्तसिंह के लिए असम्भव हो गया। किन्तु वे उससे भयभीत न हुए। वे अमानुषी वीरता दिखलाकर दुश्मनों की गति रोकने लगे। वह जगह पहाड़ी थी, इसलिए आक्रमण-कारी सहज ही नदी के पार न हो सके; किन्तु साहसी मुराद

बहुत सी सेना साथ ले सब विघ्न-बाधाओं को किनारे कर नदी पार हो गया। यह देख कर जितनी सेना थी सभी नदी के पार उतर आई। पस्तहिम्मत, डरपोक कासिमखाँ उसी घड़ी सेना-सहित भाग गया। यशवन्तसिंह अकेले पड़ गये। इससे उनके पराभव की सीमा न रही। मानो विपत्ति ने उन्हें चारों ओर से घेर लिया। कुछ भी हो, किन्तु थे तो वे क्षत्रिय, चारों ओर से शत्रु-सेना से घिर जाने पर भी वे धीरतापूर्वक बड़ी बहादुरी के साथ लड़ाई करने लगे। उनकी सेना की संख्या क्रमशः घटने लगी। उनके प्रिय अनुचरगण चारों ओर हताहत होने लगे। मुग़ल सैनिक जय-जयकार से धरती और आकाश को कम्पायमान करने लगे। तथापि राजपूत वीर युद्ध से पराङ्मुख न हुए। यशवन्तसिंह जी पर खेल कर बहुत देर तक लड़े, पर जब उन्होंने देखा कि अब लड़ने में कुशल नहीं है तब वे केवल पाँच सौ बचे हुए सिपाही साथ लेकर रणभूमि छोड़ कर चल खड़े हुए। सात हज़ार राजपूत वीर उस दिन के भीषण संग्राम में खेत आये।

अठारहवाँ परिच्छेद

चित्तौर

यशवन्तसिंह की बची हुई थोड़ी सी सेना राजपूताने की ओर आने लगी। नरेन्द्र अपने परम मित्र गजपतिसिंह की मृत्यु से अत्यन्त दुखी हुआ। किन्तु प्रतिदिन नये नये देशों के देखने से उसकी चित्तवृत्ति बँट पड़ी और उसका वह दुःसह शोक धीरे-धीरे घट चला। कितने ही दिनों बाद राजपूत-सेना ने राजपूताने की सीमा के भीतर पाँव रक्खा। यशवन्तसिंह मारवाड़ देश के राजा थे। उस देश में मेवाड़ देश होकर आना पड़ता था।

मेवाड़ के असंख्य क़िले देखकर नरेन्द्र चकित हुआ। सभी क़िले प्रायः पहाड़ के ऊपर बने थे। उन क़िलों को सहसा हस्तगत करना शत्रुओं के लिए दुःसाध्य था। पहाड़ अपनी चोटी पर मुकुट की भाँति क़िलों को धारण कर अपूर्व शोभा पा रहे थे। उन क़िलों में जाने का एक ही रास्ता था, जो सोपान की तरह नीचे से ऊपर तक बना था। उसी रास्ते से लोग आते-जाते थे। क़िले के अन्दर खाद्य-सामग्री बराबर जमा रहती थी। युद्ध के समय क़िले में प्रवेश करने का वह एक-मात्र पथ रोक दिया जाता था। फिर शत्रुगण हज़ार उपाय करने पर भी क़िले के भीतर प्रवेश नहीं कर सकते थे। क़िले के रहनेवाले, दुश्मनों से निर्भय, निश्चिन्त रहा करते थे। शत्रुगण जब क़िले की तरफ़ बढ़ने का परिश्रम करते तब ऊपर से ऐसी ऐसी शिलायें लुढ़का दी जाती थीं कि जिनके आघात से एक ही बेर झुंड के झुंड शत्रु सैनिक नष्ट हो जाते थे।

इस प्रकार भाँति भाँति के क़िलों की शोभा देखते हुए सैनिकगण सन्ध्या-समय चित्तौरगढ़ के पास आ पहुँचे।

सैन्यगण भोजनादि कृत्य समाप्त करके अपने अपने शिविर में विश्राम करने गये, किन्तु नरेन्द्र कुछ राजपूत वीरों को साथ ले चित्तौर पहाड़ के ऊपर चढ़ कर क़िले के भीतर घूमने लगा। नरेन्द्र ने चकित दृष्टि से कुम्भराणा का सुन्दर स्तम्भ देखा, महारानी पद्मिनी का प्रासाद और पुष्करिणी देखी, तथा जिस सदर फाटक पर बड़े बड़े प्रतापी क्षत्रिय योद्धाओं ने तलवार के हाथ शत्रुओं का सामना करके जीवन-त्याग किया था, वह स्थान देखा। जिस जगह क्षत्राणियों ने चितारोहण करके वंश की मानमर्यादा की रक्षा की थी, वह जगह भी देखी।

एकाएक उसके सामने एक वृद्ध मनुष्य आकर उपस्थित हुआ। राजपूतों में किसी किसी ने उसे पहचाना। वह चित्तौर का पुराना 'चारण' था। चारण लोग पहले राजपूताने के राजाओं के गौरव का गान करके राजाओं के वंशजों और नगरनिवासियों का मनोरञ्जन करते थे। राजपूताने में अब भी यह चाल है कि साँझ को सब लोग इकट्ठे होकर चारणों के मुँह से क्षत्रियवंश का वर्णन सुनते और अपने पूर्वजों की अद्भुत वीरता की बातें सुन सुनकर आँखों में आनन्दाश्रु भरते हैं।

नरेन्द्र और उसके साथी राजपूतों ने चारण को एक शिला के ऊपर बैठाया और आप सब उसे चारों ओर से घेर कर बैठे। नरेन्द्र-प्रभृति राजपूतों ने प्रतापसिंह का यश सुनने की इच्छा प्रकट की तो वह प्रतापसिंह का यश गाने लगा।

"राजपूतगण, यह कुछ मेरा मनःकल्पित गीत नहीं है। यह अम्बरदेश के अभिमान को चूर्ण करनेवाला, पर्वत के शिखर का, गीत है। यह पहाड़ के झरनों का गीत है। जिस पहाड़ की कन्दरा में एक साहसी राजपूत वीर की हड्डियाँ पड़ी हुई हैं उसी कन्दरा से इस गीत का आविर्भाव हुआ है। जिस पर्वतनिःसृत

नदी का जल क्षत्रिय वीर के शोणित से लाल हो गया था उस नदी के किनारे अब भी यह गीत गाया जाता है। प्रतापसिंह का यश आप लोग सुना चाहते हैं, सुनिए।

"अकबर शाह के प्रखर प्रताप से सारा भारतवर्ष काँप रहा था, किन्तु प्रतापसिंह का हृदय कम्पित नहीं हुआ। चित्तौर उनके अधिकार से निकल गया था। उनके पिता के राजत्वकाल में ही निष्ठुर अकबर शाह ने चित्तौर ले लिया था। क़िले की रक्षा करते हुए जयमल्ल ने युद्ध करके प्राण दे दिये। पुत्त, पुत्त की माँ, और पुत्त की धर्मपत्नी ने सम्मुख युद्ध में बड़ी वीरता दिखा कर प्राण-त्याग किया। राजपूत वीरों ने चित्तौर के रक्षार्थ यद्यपि बड़ी बहादुरी दिखलाई तथापि अकबर ने राजपूतों के हृदय को विदीर्ण करके चित्तौर ले ही लिया। प्रताप जब राजा हुए तब चित्तौर उनके अधिकार में न था। न उनके पास सेना थी और न धन था, किन्तु उनके हृदय में वीरता थी। वीर पुरुषों के लिए दुःसाध्य क्या है? बड़े बड़े प्रतापी क्षत्रिय राजाओं ने दिल्ली का दासत्व स्वीकार किया; किन्तु प्रतापसिंह ने दासता को तुच्छ समझा। अम्बर के भगवानदास और मारवाड़ के मल्लदेव ने अपनी लड़की तक दिल्ली के बादशाह को दे डाली। पर महाप्रतापी प्रतापसिंह ने म्लेच्छ का सम्बन्धी होना स्वीकार नहीं किया। वे स्वीकार क्यों करते? मेवाड़पति सूर्यवंश के भूषण थे। वे अपने निष्कलङ्क वंश को क्यों कलङ्कित करते?

"समुद्र की तरङ्ग की भाँति दिल्ली की सेना मेवाड़ में उमड़ आई। उसके साथ—हा ईश्वर!—राजपूताने के कितने ही राजाओं ने कलङ्क का टीका क्यों अपने ललाट पर चढ़ाया? कितने ही क्षत्रिय राजाओं ने भी दिल्ली की सेना का साथ दिया। मारवाड़, अम्बर, बीकानेर और बूँदी प्रभृति अनेक देशों के राजा लोग दासत्व का कलङ्क दूर करने तथा प्रतापसिंह को भी अधीन बनाने के हेतु अकबर के साथ हो गये। अम्बर के

महाराज मानसिंह राणा प्रतापसिंह से मिलने आये। म्लेच्छ के रिश्तेदार के साथ भोजन करने को महामान्य प्रतापसिंह सम्मत नहीं हुए। मानसिंह इस अपमान से चिढ़ कर दिल्ली से असंख्य सेना साथ ले मेवाड़ देश पर चढ़ आये। मानसिंह, तुमने अपने कुल में कमल होकर जन्म लिया; तुमने काबुल से बङ्ग-देश तक विजय-पताका फहरा कर शत्रु का संहार किया। यह किसलिए ? हाय ! म्लेच्छ की अधीनता स्वीकार करके तुमने राजपूतों के नाम में धब्बा लगाया ! मुसलमानों के चरणों की धूर से राजपूतों के उन्नत ललाट की शोभा क्या ही सुन्दर दीख पड़ती है !

"अन्धकार में इस जलप्रपात की अद्भुत तेज़ी आप लोगों को नहीं सूझती होगी। यद्यपि मैं अँधेरे में हूँ फिर भी उस तेज़ी को स्पष्ट देख रहा हूँ। उस जलप्रपात के बीच में एक बहुत ऊँचा शिलाखण्ड बड़े गर्व से खड़ा है। जलप्रपात से वह किञ्चित् भी कम्पायमान नहीं होता। जलप्रपात की अपेक्षा अधिक तेज़ी से समुद्र की तरङ्गमाला की भाँति, मुग़ल-सेना ने आकर मेवाड़ देश को आप्लावित कर दिया। परन्तु प्रतापसिंह शिलाखण्ड की तरह खड़े रहे। हल्दीघाटी में घोर युद्ध हुआ। सेनाओं का कोलाहल पहाड़ की प्रत्येक कन्दरा में प्रतिध्वनित होने लगा। युद्ध के तुमुल शब्दों से आकाशमण्डल भर गया। किन्तु साहस ही से क्या होगा ? मुग़लों की असंख्य सेना के सामने थोड़ी सी राजपूत सेना कर ही क्या सकती ? बाईस हज़ार राजपूतों में केवल आठ हज़ार राजपूतों को साथ ले प्रतापसिंह रणक्षेत्र से पृथक् हो गये और चौदह हज़ार क्षत्रिय वीर हल्दीघाटी की लड़ाई में खेत रहे।

"यह एक ही बार नहीं हुआ किन्तु हर साल इस प्रकार युद्ध होने लगा। प्रतिवर्ष मेवाड़पति के सैन्य, धन और राज्य की हानि होने लगी। हर साल उनका जीवनाकाश अन्धकार में छिपने लगा। किन्तु न उनकी वीरता का कुछ ह्रास हुआ और

न उन्होंने दिल्ली का दासत्व ही स्वीकार किया। राजपूत वीरगण, यदि तुम लोगों के नेत्रों में जल हो, हृदय में रक्त हो तो उसे किस दिन के लिए बचा रक्खोगे? यह देखो, प्रतापसिंह की रानी पहाड़ की कन्दरा में पत्थर पर सो रही है, आकाश बादलों से घिरा हुआ है, मूसलधार पानी बरस रहा है, प्रतापसिंह के शिशु गुफा के भीतर सोये हुए हैं, और प्रतापसिंह हाथ में तलवार लिये उनकी रक्षा कर रहे हैं। यह देखो, पेड़ के ऊपर से रस्सी लटक रही है। काठ के तख्ते पर कौन झूल रहा है? हा विधातः! राजा के छोटे छोटे बच्चे झूल रहे हैं। क्यों झूलते हैं? इसलिए कि नीचे रहने से उन्हें कोई जंगली हिंसक जन्तु ले न जाय। यह देखो, प्रतापसिंह की पतोहू सूखे पत्तों को जलाकर अपने हाथ से रसोई बना रही है। कुछ देर में रोटी बन कर तैयार हुई। आधी रसोई बचाकर रख दी, आधी में से सबों ने थोड़ा थोड़ा खाकर पानी पिया। जो सब उसी वक्त खा लेते तो फिर रात में बालबच्चे क्या खाते? आह, इतने में एक और दुर्घटना हुई। बच्चे के रोने का शब्द सुन पड़ा। एक छोटी सी बालिका के हाथ से वनबिलाव रोटी लेकर भाग गया। रोटी के टुकड़े के लिए राजकन्या चिल्ला चिल्ला कर रो रही है।

"क्षत्रिय-वीर! प्रतापसिंह की वीरता और सुयश का गान करो, उन्होंने पूरे पच्चीस वर्ष तक मुसल्मानों के साथ युद्ध किया। क्या गरमी, क्या जाड़ा और क्या बरसात, उन्होंने— बराबर जङ्गल-पहाड़ों में रहकर समय बिताया, कभी अपने सुख-दुःख पर ध्यान नहीं दिया। जङ्गल में, पहाड़ के ऊपर और घाटी में जहाँ पाया वहीं शत्रुसेना का विध्वंस किया। यद्यपि उनकी रानी और उनके राजकुमार आदि ने पर्वत की कन्दरा में रहकर अपार कष्ट सहे, तथापि उन्होंने जीते जी अकबर की अधीनता स्वीकार न की। प्रतापसिंह का यह यश देश-देश में

महाराज मानसिंह राणा प्रतापसिंह से मिलने आये। म्लेच्छ के रिश्तेदार के साथ भोजन करने को महामान्य प्रतापसिंह सम्मत नहीं हुए। मानसिंह इस अपमान से चिढ़ कर दिल्ली से असंख्य सेना साथ ले मेवाड़ देश पर चढ़ आये। मानसिंह, तुमने अपने कुल में कमल होकर जन्म लिया; तुमने काबुल से बङ्ग-देश तक विजय-पताका फहरा कर शत्रु का संहार किया। यह किसलिए? हाय! म्लेच्छ की अधीनता स्वीकार करके तुमने राजपूतों के नाम में धब्बा लगाया! मुसलमानों के चरणों की धूर से राजपूतों के उन्नत ललाट की शोभा क्या ही सुन्दर दीख पड़ती है!

"अन्धकार में इस जलप्रपात की अद्भुत तेज़ी आप लोगों को नहीं सूझती होगी। यद्यपि मैं अँधेरे में हूँ फिर भी उस तेज़ी को स्पष्ट देख रहा हूँ। उस जलप्रपात के बीच में एक बहुत ऊँचा शिलाखण्ड बड़े गर्व से खड़ा है। जलप्रपात से वह किञ्चित् भी कम्पायमान नहीं होता। जलप्रपात की अपेक्षा अधिक तेज़ी से समुद्र की तरङ्गमाला की भाँति, मुग़ल-सेना ने आकर मेवाड़ देश को आप्लावित कर दिया। परन्तु प्रतापसिंह शिलाखण्ड की तरह खड़े रहे। हल्दीघाटी में घोर युद्ध हुआ। सेनाओं का कोलाहल पहाड़ की प्रत्येक कन्दरा में प्रतिध्वनित होने लगा। युद्ध के तुमुल शब्दों से आकाशमण्डल भर गया। किन्तु साहस ही से क्या होगा? मुग़लों की असंख्य सेना के सामने थोड़ी सी राजपूत सेना कर ही क्या सकती? बाईस हज़ार राजपूतों में केवल आठ हज़ार राजपूतों को साथ ले प्रतापसिंह रणक्षेत्र से पृथक् हो गये और चौदह हज़ार क्षत्रिय वीर हल्दीघाटी की लड़ाई में खेत रहे।

"यह एक ही बार नहीं हुआ किन्तु हर साल इस प्रकार युद्ध होने लगा। प्रतिवर्ष मेवाड़पति के सैन्य, धन और राज्य की हानि होने लगी। हर साल उनका जीवनाकाश अन्धकार में छिपने लगा। किन्तु न उनकी वीरता का कुछ ह्रास हुआ और

न उन्होंने दिल्ली का दासत्व ही स्वीकार किया। राजपूत वीरगण, यदि तुम लोगों के नेत्रों में जल हो, हृदय में रक्त हो तो उसे किस दिन के लिए बचा रक्खोगे? यह देखो, प्रतापसिंह की रानी पहाड़ की कन्दरा में पत्थर पर सो रही है, आकाश बादलों से घिरा हुआ है, मूसलधार पानी बरस रहा है, प्रतापसिंह के शिशु गुफा के भीतर सोये हुए हैं, और प्रतापसिंह हाथ में तलवार लिये उनकी रक्षा कर रहे हैं। यह देखो, पेड़ के ऊपर से रस्सी लटक रही है। काठ के तख्ते पर कौन झूल रहा है? हा विधातः! राजा के छोटे छोटे बच्चे झूल रहे हैं। क्यों झूलते हैं? इसलिए कि नीचे रहने से उन्हें कोई जंगली हिंसक जन्तु ले न जाय। यह देखो, प्रतापसिंह की पतोहू सूखे पत्तों को जलाकर अपने हाथ से रसोई बना रही है। कुछ देर में रोटी बन कर तैयार हुई। आधी रसोई बचाकर रख दी, आधी में से सबों ने थोड़ा थोड़ा खाकर पानी पिया। जो सब उसी वक्त खा लेते तो फिर रात में बालबच्चे क्या खाते? आह, इतने में एक और दुर्घटना हुई। बच्चे के रोने का शब्द सुन पड़ा। एक छोटी सी बालिका के हाथ से वनविलाव रोटी लेकर भाग गया। रोटी के टुकड़े के लिए राजकन्या चिल्ला चिल्ला कर रो रही है।

"क्षत्रिय-वीर! प्रतापसिंह की वीरता और सुयश का गान करो, उन्होंने पूरे पच्चीस वर्ष तक मुसल्मानों के साथ युद्ध किया। क्या गरमी, क्या जाड़ा और क्या बरसात, उन्होंने— बराबर जङ्गल-पहाड़ों में रहकर समय बिताया, कभी अपने सुख-दुःख पर ध्यान नहीं दिया। जङ्गल में, पहाड़ के ऊपर और घाटी में जहाँ पाया वहीं शत्रुसेना का विध्वंस किया। यद्यपि उनकी रानी और उनके राजकुमार आदि ने पर्वत की कन्दरा में रहकर अपार कष्ट सहे, तथापि उन्होंने जीते जी अकबर की अधीनता स्वीकार न की। प्रतापसिंह का यह यश देश-देश में

सर्वत्र फैल गया और जब तक यह वसुन्धरा रहेगी तब तक उनका यह उज्ज्वल यश संसार में देदीप्यमान रहेगा। यहाँ तक कि यदि स्वर्ग में साहस और स्वदेशानुराग की बात चले तो प्रताप का यह यश आकाश-मार्ग से स्वर्गलोक में पहुँच कर देवताओं की मण्डली को भी उद्दीप्त करे।"

चारण का ओजःपूर्ण यशोगान सुनकर सभी स्तब्ध हो रहे। कुछ देर बाद उन लोगों ने सिर उठाकर देखा तो चारण का कहीं पता नहीं। न मालूम वह वहाँ से किधर चला गया। केवल चारण का गान, मेघगर्जन की भाँति, बार बार उस क्षत्रिय-सेना के कानों में गूँजने लगा।

राजपूत लोग अपने देश के और अपनी जाति के पूर्व गौरव का स्मरण करके उत्साह से पुलकित हो उठे। उनकी आँखों में आँसू भर आये। बहुत देर तक वे लोग चुपचाप वहीं बैठे रहे, फिर उठकर वहा से अपने शिविर में आये। नरेन्द्र उन लोगों के साथ नहीं गया। वह गाल पर हाथ रक्खे उस मेघाच्छन्न रात में चित्तौर के क़िले में बैठ कर न मालूम क्या-क्या सोचने लगा। बादल का रङ्ग क्रमशः घना होने लगा। तो भी नरेन्द्र वहाँ से न उठा। बादल बार-बार गरजने लगा, बिजली चमक चमक कर लोगों की आँखों में चकाचौंधी पैदा करने लगी, हवा बड़े वेग से बहने लगी तो भी नरेन्द्र वहीं बैठा रहा।

नरेन्द्र मन ही मन सोचने लगा—मेरे देश में भी बड़े-बड़े पराक्रमी राजा हैं, तो फिर रमणीय बङ्गदेश की ऐसी दुर्दशा क्यों है? राजपूतों के जीवन का मुख्य व्यवसाय युद्ध ही है। आबाल-वृद्ध सभी युद्ध करना जानते हैं। उन लोगों ने धन, सम्पत्ति और प्राण तक त्याग दिये हैं, पर स्वाधीनता का त्याग नहीं किया। उन लोगों के गाँव जल कर ख़ाक हो गये हैं, शहर लूट लिये गये हैं; क़िला शत्रुओं के हाथ में जा चुका है तो भी अब तक उन लोगों ने अपनी स्वाधीनता का गौरव नहीं खोया। उस

गौरव का गान अब भी अर्वली पहाड़ की कन्दरा और तराइयों में प्रतिध्वनित हो रहा है। एक वङ्गदेश है, जिसके गौरव का गान न प्रखरप्रवाहिनी गङ्गा नदी के किनारे सुना जाता है और न स्वाधीनता का गान ब्रह्मपुत्र के तीर पर ही कहीं सुना जाता है। राजा से लेकर प्रजा तक सभी सुख की नींद सो रहे हैं। संसार में न कोई उनका नाम जानता है और न वीरमण्डली में बैठने के लिए उनको कहीं जगह मिलती है।

उन्नीसवाँ परिच्छेद
जोधपुर

दूसरे दिन सवेरे नरेन्द्र को अनुसन्धान करने पर ज्ञात हुआ कि पूर्वोक्त चारण बाल्यकाल में मेवाड़पति प्रतापसिंह के द्वारा प्रतिपालित हुआ था। वह लड़कपन में बराबर प्रतापसिंह के साथ पर्वत की गुफा और तराई में रहा करता था। उसने उसी छोटी-सी अवस्था में महाराज के सुयश की रचना करके अपने कवित्व का परिचय दिया था।

दिल्लीपति के साथ बारंबार युद्ध करने के पीछे जब प्रतापसिंह का देहान्त हुआ तब चारण की उम्र बीस वर्ष की थी। यह लगभग साठ वर्ष की बात हुई। इसलिए चारण की उम्र इस समय अस्सी वर्ष के लगभग होगी। यद्यपि उसकी अवस्था अब घूमने-फिरने लायक़ नहीं रही तो भी वह चित्तौर के क़िले में रात को घूमता है। लोग कहते हैं कि चारण का शारीरिक बल अब भी युवा पुरुषों की अपेक्षा कम नहीं है। उसमें एक दैवी शक्ति है।

प्रतापसिंह जब मरने लगे तब उन्होंने युवराज अमरसिंह को अपनी मृत्युशय्या के पास बुलाकर कहा कि वे भी पिता की भाँति मुसल्मानों के साथ युद्ध करें और कभी मुसल्मान की अधीनता स्वीकार न करें। पिता की आज्ञा के अनुसार अमरसिंह ने कई वर्ष तक अकबरशाह और उनके बेटे जहाँगीर के साथ युद्ध किया और अपने पिता के तुल्य युद्ध में असाधारण वीरता दिखाई। हरेक युद्ध में अमरसिंह के साथ उक्त चारण रहता था और उनके पिता की वीरता का दृष्टान्त दिखाकर सर्वदा

उन्हें उत्तेजित किया करता था। किन्तु वह उत्तेजना विफल हुई। अन्त में अमरसिंह ने जहाँगीर की अधीनता स्वीकार कर ली। किन्तु अधीनता नाम-मात्र की थी। वे अपने देश के राजा पूर्ववत्, स्वतन्त्र के स्वतन्त्र, बने रहे। वे जो बादशाह के निकट कर भेजते थे, सो उतना ही अपने खज़ाने से और मिला कर बादशाह उनके पास लौटा दिया करते थे। अमरसिंह को कभी दिल्ली नहीं जाना पड़ता था। उनके पुत्र करुण और पौत्र जगतसिंह को जहाँगीर और उनकी प्राणप्रियतमा बेगम नूरजहाँ जब तब बड़े आदर से बुलाती थीं और भाँति भाँति के भूषण तथा जवाहिरात देकर उन्हें प्रसन्न करती थीं। यह सच्ची अधीनता कदापि नहीं कहला सकती तथापि वह चारण क्रोध और ग्लानि से ज्ञानरहित होकर अमरसिंह को अधीन समझ अनेक कटु वचन कहकर चला गया। चारण की कटुवाणी से अमरसिंह लज्जित हुए। उन्होंने पिता के निकट जो प्रतिज्ञा की थी उसका स्मरण करके, राज्य त्याग कर, वानप्रस्थ-व्रत धारण किया। करुण राजा हुए।

अकबर ने जब चित्तौरगढ़ को तोड़ डाला था तब चित्तौर की जगह उदयपुर नाम से एक नई सुन्दर राजधानी स्थापित हुई थी। किन्तु चारण उदयपुर में न रहकर उसी भग्न चित्तौरगढ़ में रहता था। दो-एक दिन का अन्तर देकर वह पहाड़ी क़िले से उतर कर नीचे आता था। ग्रामनिवासी लोग जो कुछ उसे खाने को दे देते थे, वह लेकर फिर क़िले में लौट जाता था। इस प्रकार एकान्तवास करते करते वह एक तरह से पागल हो गया। पहाड़ की गुफा उसको घर का काम देने लगी। मेघ की धीर ध्वनि से जब धरती काँप उठती और झंझावात से जङ्गल के पेड़ हिलने-डोलने लग जाते तब चारण को बड़ा उल्लास होता था। उसके हृदय में यह बात स्वप्नवत् प्रतीत होने लगती थी कि फिर प्रतापसिंह अकबर के साथ जूझ रहे हैं।

राजपूत योद्धा इस तरह घूमते-घामते कई दिनों में जाकर

अर्वली पर्वत के पार हुए। अर्वली पहाड़ की अद्भुत शोभा देख-कर सभी सेना चकित हो रही। पहाड़ की ऊँची ऊँची चोटियाँ मानो आसमान से बातें कर रही थीं। पहाड़ के बीच में कहीं कहीं झरनों की बहार दिखाई दे रही थी। कहीं झरने का जल एकत्र होकर सरोवर सा बन गया था और कहीं नदी के रूप में प्रवाहित होकर दूर तक चला गया था।

उन सैनिकों को जब कभी रात में पहाड़ के रास्ते से जाना पड़ता था तब वे लोग रात को पहाड़ की जैसी कुछ विलक्षण शोभा देखते उसका वर्णन नहीं हो सकता। दोनों ओर पर्वत के ऊँचे ऊँचे शिखर चन्द्रमा के प्रकाश में अपनी स्वच्छता की छवि दिखला रहे हैं। आधी रात के समय मानो वे चुपचाप, स्थिर भाव धारण कर, योगी पुरुषों की तरह सांसारिक वासनाओं को तज कर ऊपर की ओर सिर उठाये ध्यान करने बैठे हैं। गम्भीर रात में पार्श्ववर्ती पहाड़ों की शोभा देखते हुए, हृदय को उमङ्ग से भरते हुए, दो पहाड़ों के बीच से सैन्य जाने लगे।

पहाड़ के ऊपर, नीचे, कन्दराओं में, कितने ही असभ्य आदिमनिवासी भिल्ल सकुटुम्ब रहते हैं। भारतवर्ष के अन्यान्य स्थानों में जैसे इनकी संख्या अधिक है वैसे ही राजपूताने में भी है। आर्यगणों ने तलवार के ज़ोर से खेती की समस्त उपयुक्त भूमि इन लोगों से ले ली, इस कारण आदिमनिवासी भील पहाड़ी प्रदेश में रहने लगे। वे लोग राजपूताने के राजाओं की अधीनता स्वीकार नहीं करते फिर भी मुसल्मानों के साथ युद्ध के समय कितने ही भिल्ल धनुष-बाण लेकर पहाड़ के ऊपर चढ़ जाते और अनेक भाँति से राजपूतों की सहायता करते थे।

यशवन्तसिंह पहाड़ लाँघ कर सेनासहित अपने देश मारवाड़ में आ पहुँचे। मेवाड़ और मारवाड़ दोनों देशों को देखने ही से जान पड़ता है कि प्रकृति देवी ने दोनों देशों को कितनी

विभिन्नता दे रक्खी है। मेवाड़ देश में बीसियों पहाड़ों, भाँति भाँति के विशाल वृक्षों और हरियालियों की शोभा दीख पड़ती है किन्तु मारवाड़ में उसका विपरीत है। वहाँ न पहाड़ है, न पीपल, बरगद और पाकड़ आदि वृक्षों का कहीं नाम है; न कहीं उपजाऊ भूमि है, न वेगवती तरङ्गिणी नदी है, और न कहीं सुन्दर सरोवर है। केवल बालुकामय ऊपर ज़मीन नज़र आती है। जिधर देखिए उधर बालू का मैदान ही मैदान देखने में आवेगा। मारवाड़ को यदि बालू का समुद्र कहें तो कदाचित् अत्युक्ति न होगी। उस बालुकाराशि में सूर्य की प्रखर किरणों से उत्तप्त पथिकों को किञ्चित् छाया का सुख देनेवाला यदि कोई नाम-मात्र का वृक्ष है तो बबूल और उसी के जोड़ के अन्यान्य छोटे छोटे वृक्ष या पौदे हैं। इस मरुभूमि पर होकर जाते समय मेवाड़ देश के सैन्य ने मारवाड़ी सेना से परिहास करके कहा—

आक बबूल वृक्ष सुविशाल।
अन्न बाजरा मोठ कि दाल॥
पानी का नित रहे कलेश।
देखा मारवाड मरु देश॥

मारवाड़ियों ने गर्व के साथ उत्तर दिया—"हम लोगों की जन्मभूमि उपजाऊ नहीं है, परन्तु वीरप्रसविनी अवश्य है।" मारवाड़ के निवासी राजपूत युद्ध करने में जैसे साहसी और शूर थे, उनकी अपेक्षा विशेष साहसी राजस्थान के अन्य क्षत्रिय थे या नहीं, इसमें सन्देह है।

इस प्रकार घूमते-फिरते कई एक दिन पीछे सेना जोधपुर की राजधानी के सामने आ पहुँची। सभी ने वहाँ विश्राम के लिए डेरा डाला। नरेन्द्र अपने सुहृद् गजपतिसिंह की बात याद करके एक बार राजा से भेंट करने गया। राजा यशवन्तसिंह ख़ेमे में अकेले चुपचाप उदास मुँह किये बैठे थे। नरेन्द्र उनके पास जा पहुँचा।

राजा साहब की आज्ञा पाकर नरेन्द्र हाथ जोड़ कर बोला—महाराज! सिप्रा नदी के किनारे आपका एक प्रिय अनुचर मारा गया है। किसी समय महाराज ने प्रसन्न होकर उसे यह मोतीमाला दी थी। उसने आपके इस पुरस्कार का उचित सम्मान किया। आपकी विजय-कामना से अनेक दुश्मनों को मार कर वह आप भी सम्मुख युद्ध में मर मिटा। मृत्यु के पहले एक दिन गजपतिसिंह ने मुझे आज्ञा दी थी कि यह मोती की माला महाराज को लौटा देना।

उस माला को हाथ में लेकर राजा कुछ देर तक देखते रहे, फिर ठण्डी साँस लेकर बोले—हा! गजपतिसिंह! मारवाड़ में तुमसे बढ़कर साहसी योद्धा कोई न था। हम तुम्हारे पिता तेजसिंह को जानते हैं। सूर्य-महल क़िले में हमने उनका आतिथ्य ग्रहण किया था। प्यारे गजपतिसिंह, तुम हमारे ही अनुरोध से मारवाड़ में आये थे, और बार बार युद्ध में अपने पिता के समान तुमने पराक्रम दिखलाया था। एक बार युद्ध में तुमने हमारी जान बचाई थी, इस कारण प्रसन्न होकर हमने तुम्हें यह माला पुरस्कार में दी थी। इस मुग़ल-युद्ध में तुमने हमारे लिए अपना जीवन त्याग कर यह माला लौटा दी। सुनो नरेन्द्र, नदी का जल जो आगे बढ़ जाता है वह लौट कर फिर पीछे नहीं आता। राजा एक बार जिसे जो कुछ दे डालता है उससे वह फिर वापस नहीं लेता। तुम अपने मित्र की मुक्तामाला लो, और इसे अपने कण्ठ में धारण करो। हम यह माला तुमको इसलिए देते हैं कि युद्ध के समय तुम्हें अपने मित्र की वीरता का स्मरण बना रहे।

नरेन्द्र ने राजा को शतशः धन्यवाद देकर उस माला को माथे पर चढ़ा कर कहा—महाराज, दास का एक निवेदन है। गजपतिसिंह के दो बालक हैं। वे मातृहीन हैं, अब उन्हें पितृ-हीन भी कहना चाहिए। गजपतिसिंह ने महाराज से निवेदन

करने के लिए कहा था कि महाराज उन बच्चों पर दया-दृष्टि रक्खें, जिसमें समय पाकर बेटा रघुनाथ भी राजा की आज्ञा से युद्ध में प्राण देने को समर्थ हो। इससे अधिक उसके मङ्गल की कोई कामना उसके पिता के मन में न थी।

यह करुणा से भरी हुई बात सुनकर राजा की आँखों में आँसू भर आये। उन्होंने कहा—वत्स, धीरज धरो। हम गजपतिसिंह की सन्तान को अपनी सन्तान के बराबर समझेंगे, और जोधपुर की रानी, माँ की तरह, उन बच्चों का लालन-पालन करेंगी। रानी को अभी हम लोगों के आने की ख़बर किसी ने नहीं दी। हमारे दूत जाते हैं, तुम भी उनके साथ जाओ। तुम उन दूतों के साथ स्वयं रानी के पास जाकर गजपतिसिंह का वृत्तान्त कह सुनाओ और उसके छोटे छोटे से बच्चों के विषय में भी दो-एक बातें कह देना।

राजा की आज्ञा के अनुसार नरेन्द्र कई एक राजपूत दूतों के साथ जोधपुर के क़िले के भीतर गया। जिसने जोधपुर के क़िले को एक बार देखा है वह कभी उसे नहीं भूल सकता। चारों ओर बालू का समुद्र है, उसके बीच में टापू की भाँति एक ऊँचा पहाड़ है। उस पहाड़ के शिखर पर जोधपुर का क़िला योद्धाओं के किरीट के सदृश शोभा पा रहा है। पहाड़ के नीचे एक बहुत बड़ा शहर है। शहर के भीतर दो सुन्दर तालाब हैं। पूरब ओर रानी-ताल और दक्खिन ओर गुलाब-सागर स्वच्छ जल से भरे हैं। नगर की स्त्रियों के झुंड इन पोखरों में जल लेने आते हैं। पोखर के चारों ओर अमराई है, जिसमें आम-अनार आदि भाँति-भाँति के सुहावने फलवान वृक्ष लगे हैं। नगर-निवासी लोग स्वच्छन्दता-पूर्वक उस अमराई में घूम-फिर कर अपने हृदय को आनन्दित करते हैं।

नरेन्द्र और राजपूत दूतगण रमणीय नगर को नीचे छोड़-कर पहाड़ पर चढ़े और घड़ी भर में राजमन्दिर के सदर फाटक

पर जा पहुँचे। रानी की आज्ञा मिलने पर, दूत और नरेन्द्र अन्तःपुर में पहुँचे।

संगमर्मर के दिव्य सिंहासन पर रानी बैठी हैं। चारों ओर परिचारिकायें खड़ी हैं। कोई पान का डिब्बा हाथ में लिये है, कोई चँवर डुला रही है और कोई आज्ञा की प्रतीक्षा से रानी के मुँह की ओर देख रही है। यद्यपि रानी का मुख-मण्डल घूँघट के भीतर छिपा है तथापि उनके मुखचन्द्र का प्रकाश कुछ कुछ बाहर निकल रहा है। उनकी काली चिकुर-राशि में गूँथे हुए हीरा, मोती आदि अनेक रत्न तारागणों की भाँति चमक रहे हैं।

दूतों ने हाथ जोड़कर विनयपूर्वक, डरते हुए, धीरे धीरे युद्ध का सारा संवाद कह सुनाया। महारानी कुछ देर निस्तब्ध हो रहीं, उनके मुँह से एक भी शब्द न निकला। जैसे वज्रपात और झरी के पूर्व आकाश-मण्डल निस्पन्द हो रहता है वैसे ही वह भी निस्पन्द हो गईं। फिर वे एकाएक घूँघट हटाकर आरक्त नयनों से दूतों की ओर देखकर बोलीं—"कायरो! सिप्रा नदी में तुम लोग डूब क्यों न मरे? धिक्कार है तुम लोगों के इस जीवन पर! हट जाओ, मेरे सामने से। अपने कायर स्वामी से जाकर कहो कि युद्धक्षेत्र से भागकर वे आप तो कलङ्कित हुए ही, किन्तु उन्होंने अपने वंश को भी कलङ्कित कर डाला। वे अब मेरे इस पवित्र क़िले के भीतर न आने पावेंगे। वे अब मेरे सामने मुँह दिखाने योग्य नहीं रहे।" यह कहते कहते रानी क्रोध से मूर्च्छित हो गईं।

सहचरियों के अनेक उपचार से जब रानी को कुछ चैतन्य हुआ तब वे फिर सँभल कर बैठीं और क्रोध से ज्ञान-शून्य होकर यों बकने लगीं,—क्या कहा? वे रण-भूमि से भाग खड़े हुए! जो शत्रु से डरकर रणभूमि से भाग खड़ा हो, वह क्षत्रिय नहीं, वह मेरा पति भी नहीं। मैं अब इन आँखों से ऐसे क्षत्रिय पुरुष को तो देखना नहीं चाहती। मैं मेवाड़ के राना की बेटी हूँ। जो

प्रतापसिंह के वीर-वंश की कन्या से ब्याह करेगा वह ऐसा भीरु, ऐसा कायर क्यों होगा ? यदि वे युद्ध में मुसलमानों को जीत न सके तो उन्होंने सम्मुख युद्ध में प्राण क्यों न दे दिये ? वे पराजय का टीका माथे में लगवाकर लौट क्यों आये ? (दूतों की ओर देखकर) अयँ ! तुम लोग अब तक मेरे सामने खड़े ही हो ? मेरे सैनिक कहाँ हैं ? इन दूतों को शीघ्र पहाड़ से ढकेलकर नीचे गिरा दें, और क़िले का द्वार बन्द कर दें।

मारे क्रोध के रानी का सारा शरीर काँपने लगा, कण्ठ रुक गया, आँखों से अग्नि के कण झरने लगे और मुँह लाल हो उठा। तब नरेन्द्र आगे बढ़ा और हाथ जोड़ कर गम्भीरतापूर्वक बोला—महारानी ! आपने हम लोगों को मृत्यु की आज्ञा दी है। सो प्राण जाने का हमें कुछ भी डर नहीं। किन्तु आप महाराज यशवन्तसिंह को कायर न कहें। मैंने उनको युद्ध करते देखा है। युद्ध में उनका जैसा वीरत्व और साहस देखा वैसा प्रायः फिर कभी किसी युद्ध में न देखूँगा।

रानी क्षण भर स्थिर दृष्टि से नरेन्द्र की ओर देखती रहीं। फिर धीरे धीरे बोलीं,—क्या सचमुच तुम्हारे स्वामी ने दुश्मनों का सामना किया था ? तुम विदेशीय हो, तुम्हारे प्राणों का कोई भय नहीं। तुम युद्ध का सारा समाचार सच सच कह सुनाओ।

नरेन्द्र ने युद्ध का सविस्तर समाचार वर्णन किया। उसने राजपूत सेना का जैसा साहस देखा था, महाराज की जैसी बहादुरी देखी थी, सब वृत्तान्त कह सुनाया। अन्त में उसने कहा—जब मुग़ल-सेना ने असाढ़ी घटा की तरह चारों ओर से आकर महाराज को घेर लिया, जब धूल और धूम से युद्धक्षेत्र में अँधेरा छा गया, और जब भीरु कासिमखाँ रण-भूमि से भाग चला, तब महाराज दुगुने उत्साह और साहस से युद्ध करने लगे। चारों ओर राजपूतों के रक्त की धारा बह चली। राजपूतों के

लोहू से सिप्रा नदी का जल लाल हो गया। कटते कटते महाराज के पास थोड़ी सी राजपूत-सेना बच रही। दग़ाबाज़ कासिमख़ाँ अपनी सेना लेकर पहले ही भाग गया था। औरंगज़ेब और मुराद कई सहस्र सेना के साथ एकाएक महाराज पर टूट पड़े। तब भी महाराज नहीं घबराये, बल्कि और भी निर्भय होकर युद्ध करने लगे। उस समय राजपूत-सेना जिस वीरता से लड़ रही थी उसका वर्णन कौन कर सकता है! एक एक राजपूत दस दस मुसलमानों के साथ जूझने लगा। आख़िर दो चार यवनों को मार कर दस-पाँच को घायल कर राजपूत वीर आप भी वीरगति पाने लगे। इस प्रकार राजपूत-सेना की संख्या घटने लगी। मुसलमानों की जयध्वनि से धरती और आकाश काँपने लगा। आठ हज़ार राजपूतों में आठ सौ भी न बचे, तो भी महाराज ने खेत न छोड़ा। प्रखर-प्रवाहिनी सिप्रा नदी और विन्ध्य पहाड़ राजा यशवन्तसिंह की इस वीरता के साक्षी हैं।

नरेन्द्र की बात सुनकर रानी की आँखों में जल उमड़ आया। वे कहने लगीं—भगवन्! तुम धन्य हो, धन्य तुम्हारी महिमा है, मैं बार-बार तुम्हारी वन्दना करती हूँ। मेरे पति ने राजपूतों का नाम रक्खा, क्षत्रियकुल की लज्जा रक्खी। तुम्हारी इन बातों से मेरा हृदय शीतल हुआ। कहो फिर क्या हुआ?

नरेन्द्र—मनुष्यों का जहाँ तक कर्त्तव्य था, राजपूत वीर जहाँ तक वीरता का काम कर सकते थे, वहाँ तक राजा यशवन्तसिंह ने किया। जब केवल पाँच सौ सैनिक बच रहे तब महाराज युद्ध करना अयुक्त जानकर हट गये।

रानी—"हट गये! यह कहो न कि दुश्मन से डरकर भाग गये! हा दैव! राणा के जामाता रण-भूमि से भाग गये!" इतना कह कर रानी दोनों हाथों से छाती पीट कर फिर मूर्च्छित होगईं।

दासियाँ रानी के मुँह पर गुलाब-जल छिड़कने लगीं, कोई

पंखा झलने लगी। कुछ देर में जब रानी को चैतन्य हुआ तब वे करुणा-भरे स्वर में बोलीं—सखी, शीघ्र चिता तैयार करो। मेरे पति युद्ध में धराशायी हो गये हैं। वे स्वर्गलोक में मेरे आने की प्रतीक्षा करते होंगे। मैं चितारोहण के द्वारा उनसे जा मिलूँगी। मेरे पति का नाम बेंच कर जो यहाँ आया है वह वञ्चक है। दूतगण, तुम अपने साथियों को लेकर शीघ्र मारवाड़ से निकल जाओ, नहीं तो तुमको अपनी ज़िन्दगी से हाथ धोना पड़ेगा।

रानी की उस आज्ञा के अनुसार नरेन्द्र और दूतगण झटपट क़िले से बाहर हो गये। रानी की आज्ञा से क़िले का द्वार बन्द कर दिया गया। क़िले से बाहर होते समय उस निष्क्रान्त दूत के हाथ में जोधपुर के राजमन्त्री ने एक पत्र देकर कहा—महाराज के पास तुम लोगों के लौटकर जाने की कोई आवश्यकता नहीं। यह पत्र लेकर तुम लोग शीघ्र मेवाड़ की राजधानी उदयपुर को जाओ। वहाँ जाकर यह पत्र राना राजसिंह को देना। वे तुम लोगों को आश्रय देंगे। हमारी स्वामिनी महारानी साहिबा की आज्ञा अलङ्घनीय है। तुम लोग अब क्षण भर भी मारवाड़ देश में नहीं ठहर सकते। उदयपुर में महारानी की माता हैं। इस पत्र को पाते ही वे जोधपुर आवेंगी। उनके सिवा उनकी बेटी को कोई सान्त्वना देकर स्थिर नहीं कर सकता।

इतिहास में लिखा है कि जोधपुर की रानी आठ नौ दिन तक बावली-सी बनी रहीं। अन्त में उदयपुर से उनकी माता ने आकर जब उन्हें बहुत तरह से समझाया तब वे शान्त हुईं और यशवन्तसिंह से भेंट करने को राज़ी हुईं। स्थिर हुआ कि यशवन्तसिंह फिर सेना संग्रह करके औरंगज़ेब से युद्ध करने जायँगे।

बीसवाँ परिच्छेद

उदयपुर

मेवाड़ देश की राजधानी पहले चित्तौर थी, और अब उदयपुर है। मारवाड़ के बालुकायम मैदान और मरुभूमि का भीषण दृश्य देखते हुए फिर मेवाड़ देश में आने के कारण नरेन्द्र बहुत .खुश हुआ। मेवाड़ देश की हरी भरी शोभा देखकर उसके हृदय में आनन्द की तरङ्ग लहराने लगी। फिर अर्वली पहाड़ से उतर कर इस तरफ़ आया, फिर उसने पहाड़ी नदी, झरने और सरोवर की सुषमा तथा अन्यान्य मनोहर दृश्य देखे। योंही मेवाड़ की शोभा देखते हुए वे लोग धीरे धीरे उदयपुर आ पहुँचे।

नरेन्द्र ने उदयपुर सा सुन्दर शहर कभी नहीं देखा था। उदयपुर के चारों ओर उन्नत पर्वत है। क़िले के नीचे, रमणीय सरोवर के निकटवर्ती पहाड़ के ऊपर, राजमन्दिर है तथा और भी कितने ही ऊँचे ऊँचे प्रासाद हैं। सीसमहल की तो शोभा ही न्यारी है। मानो सभी सुन्दर सुहावने राजभवन साफ़ आइने में अपने सुन्दर प्रतिरूप को निहार रहे हैं।

जोधपुर के दूतों ने सूर्यद्वार के मार्ग से उदयपुर में प्रवेश किया। जोधपुर और उदयपुर के बीच उस समय मित्रता थी इसलिए जोधपुर के दूतों को देखकर नगरनिवासियों ने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। नरेन्द्र और उसके साथी दूत सदर रास्ते से राजमहल की ओर जाने लगे। चारण लोग मङ्गल-पाठ करने लगे। रास्ते के दोनों किनारे सुहागिन स्त्रियाँ पूर्ण कलश लेकर

खड़ी हुईं और उन्होंने मांगलिक गीत गाकर उन दूतों का स्वागत किया। दूतों ने यथायोग्य सबको एक एक रुपया पारितोषिक देकर प्रसन्न किया।

इसके अनन्तर राजा की आज्ञा से वे कोठे पर बुलाये गये। संगमर्मर की सीढ़ियों को लाँघते हुए सब के सब सूर्यमहल में पहुँचे। विदेशीय दूतों को भेंट के लिए राजा उसी महल में बुलाते थे। उस महल की एक दीवार में वंश के बीजस्वरूप सूर्य्य की प्रतिमूर्ति खुदी हुई थी। इसी से वह भवन सूर्यमहल के नाम से पुकारा जाता था।

रत्नजटित स्वर्णसिंहासन पर बाप्पाराव के वंशविभूषण महाराना राजसिंह बैठे हैं। स्वर्णमंडित चाँदी की चौडंडियों पर चन्द्रातप टँगा है। उसके चारों ओर मोतियों की झालरें लगी हैं। राना के सिंहासन से कुछ हटकर सभासद् बैठे हैं। चारणगण राजवंश का वर्णन कर इस अमरावती-तुल्य राजसभा में राना के हृदय को वीर रस से प्लावित कर रहे हैं। ऐसे समय जोधपुर के दूतों ने राजसभा में प्रवेश किया।

दूतों ने हाथ जोड़कर विनय-पूर्वक जोधपुर का समस्त वृत्तान्त निवेदन किया। यशवन्तसिंह का युद्ध में पराजित हो देश लौट आना, महारानी का उन पर क्रोध करना और महाराज यशवन्तसिंह की दुर्दशा आदि की सारी कहानी सुनाकर दूत ने जोधपुर के मन्त्री का पत्र राना के हाथ में दिया। राना राजसिंह ने सब समाचार सुनकर यशवन्तसिंह के लिए खेद प्रकट करके दूतों को विश्राम करने की आज्ञा दी और उदयपुर में उन लोगों के रहने के लिए सब बातों का प्रबन्ध कर देने की आज्ञा मन्त्री को दे दी। कुछ ही दिनों के अनन्तर जोधपुर की महारानी की मा उदयपुर से जोधपुर गईं।

नरेन्द्रनाथ ने कई महीने तक उदयपुर में रहकर बड़ी खुशी हासिल की। हेमलता की प्रतिमूर्ति उसके हृदय-पट पर

अङ्कित थी। उसकी चिन्ता नरेन्द्र के चित्त में हमेशा बनी रहती थी। तथापि इस रम्य स्थान में रहने के कारण उसकी चिन्ता कुछ घट चली। उदयपुर से थोड़ी दूर पर अनेक युद्धस्थल हैं, अनेक कीर्त्तिस्थम्भ हैं, और अनेक देवस्थान हैं। जितने दर्शनीय स्थान थे सभी नरेन्द्र ने एक एक कर देखे। कभी अकेले और कभी दीवाने तातारदेशीय बालक को साथ लेकर नरेन्द्र पहाड़ की सैर करता, कभी सरोवर के तट पर घूमता, कभी युद्धक्षेत्र में घूमता, और कभी पर्वत की विचित्र गुफाओं को देखकर चकित होता था। कभी सबेरे से दोपहर दिन तक, और कभी दोपहर से सायंकाल तक पर्वतस्थली में घूमता था। सुबह से खेलते हुए राजपूतों के छोटे छोटे बच्चे उस अपरिचित भ्रमण-कारी युवा को उँगली से दिखलाकर परस्पर एक दूसरे से उसका परिचय पूछते। साँझ को जब राजपूत रमणियाँ सरोवर से कलश में जल भरकर घर लौटती थीं तब वे उस विदेशी को चारण जानकर प्रणाम करती थीं।

दीवाना भी चुपचाप नरेन्द्र के साथ साथ घूमता, और पास के पेड़ से उसके लिए फल-फूल तोड़कर ला देता था। साँझ को नरेन्द्र जब जलविहार करना चाहता तब वह उसे नाव पर सवार कर अपने हाथ से नाव खेता था। नाव धीरे धीरे सरोवर के गम्भीर जल में धँस चलती। उस समय निर्मल आकाश की शोभा और सरोवर की निस्तब्धता देखकर नरेन्द्र का हृदय शान्तिभाव से भर जाता था। कभी वह बालक मधुर स्वर में गीत गाता था और नरेन्द्र के दिल को बहलाता था। उसका वह कोमल कण्ठ-स्वर शान्त सरोवर, आकाशमण्डल और पहाड़ों में गूँजने लग जाता था। तातारी भाषा का वह गीत नरेन्द्र की समझ में न आता था पर उस गीत के दो एक शब्द सुनकर वह इतना समझ लेता था कि यह प्रेम का गान है। हा! अभागे उन्मत्त बालक! तू इतनी ही थोड़ी सी उम्र में प्रेम के कारण इतना बावला बन गया! यदि, प्रेम का उन्माद न होता तो तू

पागल क्यों बनता ? तेरी आँखें ही क्यों ऐसी अस्वाभाविक प्रभा धारण करतीं ! अपने घर-बार को छोड़कर तू देश-देश घूमता ही क्यों ? तू जो कुछ है, पर है तू नरेन्द्र की सेवा के उपयुक्त भृत्य।

चाँदनी रात में उस सरोवर के स्वच्छ जल की शोभा बड़ी विलक्षण देख पड़ती थी। चन्द्रमा का प्रकाश तरङ्ग में नृत्य करता हुआ बड़ा ही सुन्दर देख पड़ता था। ठंडी हवा धीरे धीरे बह-कर उस तरङ्गमाला को मानो बार बार चूम रही थी। नाव पर लेटा हुआ नरेन्द्र चारों ओर के पर्वतों की शोभा और अनन्त आकाश की निर्मल नीलिमा देख देखकर हृदय में अपूर्व आनन्द का अनुभव करता था। बीच बीच में उसे बाल्यकाल की कोई कोई बात स्मरण हो आती थी। उसके साथ हेमलता का भी स्मरण हुए बिना न रहता था। हेमलता का स्मरण होते ही अलक्षित रूप से आँसू बहकर योद्धा के दोनों गालों को भिगो देते थे।

इसी तरह कई महीने गुज़र गये। आखिर आश्विन का महीना आया। चारों ओर देवी-पूजा की धूम मच गई।

इक्कीसवाँ परिच्छेद

शारदी पूजा

शरद् ऋतु आ पहुँची। राजपूताने में युद्ध का यही उपयुक्त समय समझा जाता था। इसलिए रजवाड़ों में देवी-पूजा के साथ साथ खड्ग की पूजा भी होती थी। नरेन्द्रनाथ ने दसहरे के अवसर पर दस दिन तक उत्तरोत्तर जो महोत्सव देखा उसका वर्णन नहीं हो सकता। पूर्वजों ने जिन आयुधों को लेकर युद्ध में विजय प्राप्त किया था या हत होकर वीरगति पाई थी, उन आयुधों की पूजा राजपूत लोग बड़े उत्साह से करने लगे। श्रीदुर्गाजी के मन्दिर में हिंसाप्रिय व्यक्तियों की ओर से दस दिन तक बराबर भैंसे और बकरों की बलि होती रही। विजयदशमी के दिन बड़े समारोह से दुर्गादेवी की पूजा हुई। उसके एक दिन बाद महाराना अपनी समस्त सेना से सजधज-कर रङ्गस्थल में उपस्थित हुए। उस दिन उदयपुर में, जिधर देखिए उधर ही, शोभा-समुद्र की तरङ्ग लहरा रही थी। हाट, बाट, गली, चौहट्टे, घाट आदि सभी स्थान माङ्गलिक पदार्थों से सजाये गये थे। जहाँ तहाँ फूलों की मालाओं और हरित नव-पल्लवों से अलंकृत कदलीस्तम्भों की श्रेणियाँ अपूर्व शोभा प्रकट कर रही थीं। घर घर में उत्सव छा रहा था। सभी के द्वार पर तोरण, बन्दनवार और पताका फहरा रही थीं। विजय के नक्क़ारे और भाँति भाँति के बाजों-गाजों के साथ राजपूत सैन्य अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित हो रङ्गस्थल की ओर जा रहा था। उदयपुर के वशवर्ती अनेक स्थानों से अनेक सेनापति, अपनी

अपनी सेना को साथ ले, क्रीड़ास्थल में इकट्ठे हो रहे हैं। विविध स्थानों के लोगों के विविध परिच्छद, अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र और चित्र-विचित्र पताकाओं से उदयपुर का रङ्गस्थल शोभायमान हो रहा है। पन्द्रह हज़ार राजपूत योद्धा महाराना को चारों ओर से घेरे खड़े हैं। सेना-मण्डली के बीच में महाराना सूर्यवत् देदीप्यमान हो रहे हैं।

राजपूत वीरों का युद्ध-कौशल देखने के लिए सबेरे से लेकर सायंकाल तक रङ्गस्थल में दर्शकों की अपार भीड़ लग गई। नगर-निवासी आबाल-वृद्ध उमड़ पड़े। क्रीड़ास्थल के चारों ओर इतनी भीड़ थी कि लोग एक दूसरे पर गिरे पड़ते थे। कोसों का मैदान लोगों से ठसाठस भर गया। परन्तु प्रबन्ध ऐसा उत्तम था, जिससे सभी को तमाशा देखने का सुभीता था। सभी लोग आराम से तमाशा देख रहे थे। राना की आज्ञा पाकर सैन्यगण तीरनिक्षेप, शक्तिप्रक्षेप (बरछा चलाना) और खड्गप्रहार तथा अश्वपरिचालन में अपना अपना कौशल दिखलाने लगे। इसी प्रकार मेवाड़ के विविध स्थानों से आगत सामन्तगण और दुर्ग के नेता राजपूत अपना अपना रण-कौशल अलग ही दिखलाने लगे। चन्दावत्, जगावत, राठौड़, पवाँर और झाला-वंशी आदि अनेक प्रधान क्षत्रिय आज उदयपुर में राना के निकट राजभक्ति और युद्ध-कौशल दिखलाने आये हैं। उन लोगों के निजी चारण उनके वंश-गौरव का गान गा रहे हैं। नरेन्द्र दिन भर यों ही कृत्रिम युद्ध का उत्सव देखकर और चारणों का गान सुनकर पुलकित होता रहा। अब भी रजवाड़ों में शारदी पूजा के अन्तिम दिन इसी तरह उत्सव मनाया जाता है। अब भी राजपूत योद्धागण दसहरे के दिन अपने अपने राजा के निकट एकत्र होकर युद्ध-कौशल दिखलाते हैं। अद्यावधि नगर-निवासी राजपूत दसहरे के दिन क्रीड़ा-स्थान में इकट्ठे होकर पहले देशाधीश राजा के प्रति भक्ति दिखलाते हैं। इस

उपन्यास के रचयिता लिखते हैं कि राजस्थानों में घूमते समय उन्होंने दसहरे के अवसर पर खड्गपूजा आदि अनेक महोत्सव अपनी आँखों देखे हैं। इन्होंने झुंड के झुंड नर-नारियों को, किसी एक निर्दिष्ट स्थान में एकत्र होकर, राजभक्ति प्रकट करते और प्राचीन नियमों के अनुसार स्वेच्छाधीन राजपूतों को दसहरे का आनन्दोत्सव मनाते देखकर अपनी आँखों को तृप्त किया था।

दिन भर योंही भाँति भाँति के महोत्सव देखकर नरेन्द्रनाथ ने सन्ध्या-समय एक पेड़ के नीचे बैठ कर कुछ फल-मूल खाने का उद्योग किया। वह समीपस्थ कुएँ से पानी लाने गया। कुएँ के पास एक व्यक्ति गोस्वामी का भेष धारण किये खड़ा था। वह भी पानी लाने गया था। वह नरेन्द्र को कुछ कठोरता-पूर्वक हटा कर पहले स्वयं जल भरने लगा।

गोस्वामी का यह अशिष्ट व्यवहार देख नरेन्द्र ने भी क्रुद्ध होकर दो एक कटु वचन कहे। इस पर गोस्वामी ने उसकी अपेक्षा दुगुने कटु वचनों का प्रयोग करके कहा—तू किस देश का रहने-वाला है? राजस्थान में आकर राजपूतों के साथ झगड़ते तुझे डर नहीं लगता?

नरेन्द्र—मैं किसी भी देश का रहनेवाला क्यों न होऊँ, किन्तु मैं बहुत दिनों से राजपूतों के साथ रह चुका हूँ। तुम्हारे ऐसा अशिष्ट राजपूत एक भी देखने में नहीं आया।

गोस्वामी—यदि राजपूतों के साथ रह चुके हो, तो जानते ही होगे कि राजपूत-मात्र तलवार चलाना जानते हैं, इसलिए चुप हो रहो।

नरेन्द्र—तुम बड़े घमण्डी मालूम होते हो। मैं भी ढाल-तलवार चलाने की थोड़ी-बहुत शिक्षा पा चुका हूँ। मेरे आगे अभिमान न करो। मैंने सिर्फ़ गोस्वामी जान कर इस दफ़े क्षमा किया है।

बात ही बात में विवाद बढ़ने लगा। गोस्वामी बहुत बिगड़ा, यहाँ तक कि नरेन्द्र को मार बैठा। तब नरेन्द्र ने भी उसे मारा। थोड़ी ही देर में दोनों, क्रोध से ज्ञान-शून्य होकर, ढाल-तलवार लेकर लड़ने को उद्यत हो गये। उस समय कुछ कुछ अँधेरा-सा हो गया था। वह जगह लोगों से ख़ाली हो गई थी। सब लोग वहाँ से पहले ही चले गये थे।

दोनों भिड़ गये। दोनों में युद्ध होने लगा। कुछ देर तक दोनों अपनी अपनी घात बचा कर बड़े वेग से लड़े। आख़िर नरेन्द्र पराजित हुआ। उस बलवान् असीम साहसी गुसाईं के प्रचण्ड आघात से नरेन्द्र के हाथ की तलवार धरती पर जा गिरी। नरेन्द्र ख़ुद भी गिर पड़ा।

गोस्वामी ने कड़ककर कहा—परदेशी योद्धा! तू अभी बालक है, जा, तेरा अपराध मैंने माफ़ किया। फिर कभी राजपूत गुसाईं के साथ झगड़ा न करना। गुसाईं अपने जीवन को केवल पूजापाठ ही में नहीं बिताते, वे कुछ कुछ युद्ध करना भी जानते हैं।

नरेन्द्र ने कठोर स्वर में उत्तर दिया—मैं तुमसे जीवन-भिक्षा नहीं चाहता। तुम्हारी जो इच्छा हो, जो तुम्हारे जी में आवे, करो। मैं तुम्हारा अनुग्रह नहीं चाहता।

गोस्वामी ने गम्भीरतापूर्वक कहा—वीर बालक! मैं भी कभी कभी योद्धा का काम करता हूँ। योद्धा से योद्धा को कुछ माँगने में अपमान की कोई बात नहीं। नरेन्द्र! मैं तुमको पहचानता हूँ। तुम भी मुझको शीघ्र जानोगे। मुझसे प्राण-दान की भिक्षा लेने में तुम कुछ भी अपना अपमान न समझो। तीन दिन के भीतर ही फिर तुमसे मेरी भेंट होगी। उस दिन मैं भी तुमसे कुछ याचना करूँगा। मेरा नाम शैलेश्वर है।

यह कह कर गोस्वामी अन्धकार में न मालूम किधर ग़ायब हो गया। नरेन्द्र क्षुब्ध होकर रह गया।

बाईसवाँ परिच्छेद

एकलिङ्ग महादेव का मन्दिर

राजपूताने के नये नये स्थान, और नये नये आचार-व्यवहार देखकर नरेन्द्रनाथ का हृदय कुछ दिन शान्त रहा, परन्तु पत्थर पर जो चिह्न खुद जाता है वह एक-दम विलुप्त नहीं होता। वङ्गदेश से उदयपुर का कई सौ कोस का फ़ासिला है। कितने ही नद-नदियों, जङ्गलों, पहाड़ों और मरुभूमि को पार करके नरेन्द्र भारतवर्ष के एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में आया है। पर इतनी दूर आने ही से क्या? प्रातःकाल पूरब की ओर आकाशमण्डल में जब वह सूर्य की लालिमा देखता था तब उसके हृदय में पूर्वदेशवासिनी बालिका का स्मरण हो आता था। रात को जब वह अकेला छत के ऊपर टहलता था तब उसे जान पड़ता था जैसे वह प्रणयमूर्त्ति तारा की ज्योति में उसको प्रेम-दृष्टि से ताक रही है। कहाँ वीरनगर का विशाल भवन, कहाँ कोमल कलनादिनी गङ्गा का निर्मल प्रवाह और कहाँ यह बेचारा विरही नरेन्द्रनाथ! क्या अपने देश से भाग कर अन्यत्र जाने से चिन्ता हट सकती है? जहाँ चाहो, भले ही भाग कर जाओ, चिन्ता पीछे लगी ही जायगी। मृत्यु के पहले एक बार नरेन्द्र हेमलता को देखना चाहता है। वह सवेरे, साँझ, और आधी रात को मन ही मन जो कुछ सोचता है, वह एक बार हेमलता से कहे—यही उसकी एक-मात्र इच्छा है। मृत्यु के पूर्व क्या नरेन्द्र की एक बार हेमलता से फिर भेंट न होगी? नरेन्द्र ने तातार के पगले बालक से सुना था कि एकलिङ्गेश्वर महादेव के मन्दिर में

एक महात्मा रहते हैं, वे भविष्य बतलाते हैं। नरेन्द्रनाथ एक दिन उस मन्दिर की ओर चला।

पहर रात बीतते बीतते नरेन्द्र मन्दिर के निकट आ पहुँचा। मन्दिर की अलौकिक शोभा देखने से उसके आश्चर्य की सीमा न रही। एक पहाड़ की तराई में मन्दिर शोभायमान है। उसके चारों ओर, जहाँ तक दृष्टि जाती है, केवल महा उत्तुङ्ग शैल-शिखर दीख पड़ते हैं। मानो प्रकृति ने चारों ओर अलङ्घ्य प्राचीरों से वेष्टित करके बीच में शङ्कर के उपयुक्त गृह निर्म्माण किया है।

आधी रात को नरेन्द्र ने उस प्रकाण्ड मन्दिर में प्रवेश किया। मन्दिर के सामने उजले पत्थर के बने हुए खम्भों पर सभामण्डप खड़ा था। मन्दिर के द्वार पर महादेव के वाहन नन्दी की प्रतिमूर्त्ति पीतल की बनी हुई विराज रही थी। मन्दिर के मध्यवर्ती प्रकोष्ठ के भीतर श्वेत पत्थर की दीवाल दीपावली से जगमगा रही थी। सुगन्ध से सारा घर महँक रहा था। बीच में महादेव की प्रस्तरनिर्मित प्रतिमूर्त्ति प्रतिष्ठित थी। मन्दिर के रक्षक एक दीर्घकाय, तेजस्वी, जटाधारी गुसाईं एक तरफ़ आसन जमाये बैठे थे। उनके प्रशस्त ललाट पर त्रिपुण्ड-भस्म, द्वितीया के त्रिगुण चन्द्र की भाँति, शोभा दे रहा था। विशाल कन्धे पर जनेऊ लटक रहा था। और दो-चार गुसाईं इधर-उधर टहल फिर रहे थे। इस मन्दिर के प्रधान गोस्वामी विवाह नहीं करते। उनकी मृत्यु के पीछे शिष्यों में से एक योग्य व्यक्ति उस पद पर नियुक्त होता है। मन्दिर के ख़र्च के लिए कई गाँव बतौर ज़मींदारी के मुक़र्रर थे। इसके सिवा यात्रियों से भी कुछ कम आमदनी न थी।

आधी रात के समय घण्टानाद से वह विशाल, सुन्दर, शिलानिर्मित शिवमन्दिर गूँज उठा। "बम् बम् हर हर" शब्द से समस्त मन्दिर भर गया। तदनन्तर गीत-वाद्यों के साथ महादेव की स्तुति प्रारम्भ हुई। नवयौवना नाचनेवाली ताल के साथ

नाचने लगीं, तानपूरा हाथ में लेकर गायकगण शङ्कर का भजन बड़े प्रेम से गाने लगे। कुछ देर में गाने-बजाने का कार्य पूरा हुआ। उस जटाधारी गुसाईं का इशारा पाकर वे नाचनेवाली चली गईं। गवैयों ने राग अलापना बन्द किया। रोशनी कम कर दी गई। पूजा का प्रसङ्ग समाप्त हुआ। नरेन्द्र उस अन्धकार में किंकर्तव्यविमूढ़ होकर खड़ा रहा।

कुछ देर में उसे मालूम हुआ, जैसे अँधेरे में वह लम्बा जटाधारी गुसाईं उसको इशारे से बुला रहा हो, नरेन्द्रनाथ उसी तरफ़ गया। नरेन्द्र ने गुसाईं के पास जाकर पूछा—"क्या आप इस मन्दिर के प्रधान व्यक्तियों में हैं?" गोस्वामी ने इस प्रश्न का कुछ उत्तर नहीं दिया, वह ओठों पर अँगुली रख कर चुप हो रहा। इसके अनन्तर उसने अँगुली से एक ओर दिखलाया। नरेन्द्र ने उधर देखा, पर उस गाढ़ अन्धकार में उसे कुछ दीख न पड़ा। फिर उसने ग़ौर करके देखा। इस दफ़े उसको मालूम हुआ जैसे कुछ दूर पर एक चिराग़ जलता हो। नरेन्द्रनाथ को इशारा देकर गुसाईं आप आगे आगे चला। नरेन्द्र उसका कुछ आशय न समझ कर भी उसके पीछे पीछे चला।

दोनों उस अँधेरे में बहुत दूर तक निकल आये। इस अन्धकार में ये मौनावलम्बी महात्मा पुरुष कौन हैं? इनका मतलब क्या है? शैवगण कभी कभी नरबलि द्वारा पूजन किया करते थे। इन दीर्घकाय बलिष्ठ योगी का भी वही अभिप्राय तो नहीं है? नरेन्द्र एक बार ठिठक कर खड़ा हो रहा। फिर उसने तलवार के क़ब्ज़े पर हाथ रख कर सोचा—"क्या मैं कायर हूँ जो इस शान्तमूर्त्ति योगी के साथ जाने में हिचकता हूँ?" वह निर्भीक होकर फिर धीरे धीरे गसाईं के साथ उस घोर अन्धकार में जाने लगा।

बहुत देर बाद शैव गोस्वामी ने एक पहाड़ की गुफा में प्रवेश कया। नरेन्द्र भी उसके साथ गफा के भीतर घुसा। गुफा में

उसने जो कुछ देखा उससे उसके आश्चर्य की सीमा न रही।

सामने करालवदना काली की भयङ्कर मूर्त्ति थी। उसके समीप सूखी लकड़ी धधक रही थी। उसका प्रकाश गुफा में चारों ओर फैल रहा था। अग्नि के समीप शिला पर लोगों की कुछ हस्तलिपि लिखी थी। एक जगह लोहू से भीगा हुआ खड्ग रक्खा था और नीचे का पत्थर कहीं कहीं लोहू से लाल था। उस गह्वर में एक ऐसा शब्द सुनाई देता था जैसे कि दूर से जलप्रवाह का शब्द सुन पड़ता है।

गुसाईं का स्वरूप विचित्र था। उसकी किञ्चित् सफ़ेद लम्बी दाढ़ी छाती के नीचे तक लटक रही थी, जटा का बोझ पीठ पर झूल रहा था। शरीर बहुत लम्बा, बलिष्ठ और अत्यन्त तेजोमय भासित होता था। उसकी दोनों आँखें उस अग्नि के प्रकाश में तारे की भाँति चमक रही थीं। ऊँचे ललाट पर त्रिपुण्ड्र चन्दन एक अपूर्व ही शोभा का विस्तार कर रहा था।

गुसाईं ने जलते हुए काठ को बुझा दिया। फिर उसने वह रुधिराक्त खड्ग हाथ से उठा लिया। नरेन्द्र ने आग की धुँधली रोशनी में गुसाईं को खड्ग उठाते देखा। गुसाईं का स्वरूप और भी भयङ्कर देख नरेन्द्र भौंचक सा हो रहा। वह किसी तरह दो एक पग पीछे हट कर गुफा के शिलाखण्ड में पीठ अड़ा कर खड़ा हुआ। गुसाईं की नीयत अच्छी न देख कर उसने म्यान से तलवार खींच ली। वह साहस पर भरोसा करके बड़ी सावधानी से खड़ा हो गया। किन्तु उसके हृदय की धड़कन सर्वथा निःशेष न हुई।

गुसाईं ने अतिशय गम्भीर स्वर से पुकारा—नरेन्द्र!

नरेन्द्र ने इतनी देर बाद समझा कि यह शैव दूसरा कोई नहीं, वही उदयपुर का प्रतिद्वन्द्वी योद्धा—शैलेश्वर—है।

तेईसवाँ परिच्छेद

पर्वत की गुफा

शैलेश्वर ने कहा—नरेन्द्र! एकलिंगेश्वर महादेव के मन्दिर के गुसाईं लोग योग-बल से मनुष्यों के हृदय की बात जान सकते हैं। तुम अपने हृदय में कुछ पाप की वासना लेकर इस पवित्र मन्दिर में आये हो। तुम्हारे मन में कोई पाप की चिन्ता है।

नरेन्द्र—मैं नहीं जानता कि आप कौन हैं; आपकी बातों का उत्तर देने को मैं बाध्य नहीं हूँ।

शैलेश्वर—मैं एकलिंगेश्वर महादेव के मन्दिर का महन्त हूँ मन्दिर को अपवित्र करनेवालों से पूछ ताछ करने का मुझे अधिकार है।

नरेन्द्र—आपने मुझको कैसे जाना? आपने मुझमें पाप का कौन सा चिह्न देखा है? यह मैं नहीं जानता।

शैलेश्वर—इस मन्दिर में छल-प्रपञ्च की बात नहीं चलती। यहाँ अपने दोषों को छिपाने की चेष्टा करना वृथा है। एक रमणी के प्रेम में मुग्ध होकर उसके पुनः दर्शन की लालसा से तुम यहाँ आये हो।

नरेन्द्र—मान लीजिए कि यही बात सच है, तो इसमें पाप क्या है? गोस्वामी लोग यद्यपि रमणी के प्रेम से बचे रहते हैं तथापि रमणी के प्रेम की इच्छा पाप नहीं है। साक्षात् शङ्कर ने पार्वती के प्रेम में अपने को उलझा रक्खा है।

शैलेश्वर—देखो नरेन्द्र! यह ठगविद्या की जगह नहीं है। तुम इस तरह क्यों आँखों में धूल झोंक रहे हो? तुम केवल रमणी के प्रेमाकांक्षी ही नहीं हो बल्कि यह कहो कि पर-स्त्री के प्रेम के लोलुप हो। हा, संसार में ऐसी कौन घोर यन्त्रणा है—कौन ऐसी तीव्र ज्वाला है, जिससे इस पाप का प्रायश्चित्त हो सकता है।

नरेन्द्र—जब मैं उस बालिका को हृदय से प्यार करता था तब वह अविवाहिता थी। अब यदि वह किसी के साथ ब्याही गई है तो वह अवश्य विस्मरणीय है।

शैलेश्वर—नरेन्द्र, न तुम अपने को भुलाओ और न मुझी को धोखे में डालने की चेष्टा करो। जिस घोर पाप में तुम लिप्त हुए हो उसे अच्छी तरह विवेचना करके देखो। रमणीय गंगा के तट पर खड़ी उस उच्च अट्टालिका का स्मरण करो। पवित्रात्मा रमेशचन्द्र और पवित्रहृदया हेमलता के पवित्र संसार को तुम क्यों बिगाड़ना चाहते हो? क्या तुम रमेशचन्द्र का सर्वनाश करना चाहते हो? पापिष्ठ! तुम चाहते हो कि वह हेमलता तुम्हारी होकर रहे! वह कमलनयना स्वच्छहृदया हेमलता—जो बाल्यकाल में तुम्हारे साथ खेलती थी और अब भी जो सगी बहन की अपेक्षा तुम पर अधिक स्नेह रखती है,—तुम्हारे लिए चिन्ता करती है। वह स्नेहमयी पतिव्रता रमणी कुलटा होकर तुम्हारी सेवा करेगी? सती के ललाट पर कुलकलङ्किनी, व्यभिचारिणी शब्दों का टीका लगेगा, उसका उज्ज्वल यश कालिख से पोता जायगा; और तुम्हारे कारण उसका बसा-बसाया घर ख़ाक में मिल जायगा। नरेन्द्र! क्या तुम यही चाहते हो? अपने को पाप के गड्ढे में मत गिराओ। यह सच है कि तुम इतनी दूर की बात नहीं सोचते हो। किन्तु तुम्हारा जो मनोरथ है, उसके पूर्ण होने पर इसके सिवा और क्या होगा? क्या हेम के साथ तुम्हारा विकृत प्रेम नहीं है? क्या उसके प्रति तुम्हारी

बुरी वासना नहीं है ? नरेन्द्र, सच कहो। तुम यही पाप-मनोरथ लेकर इस पवित्र मन्दिर में आये हो न ?

शैलेश्वर का कथन समाप्त हुआ। पर नरेन्द्र के कानों में उसकी यह आख़िरी बात मानो अब तक गूँज रही है। नरेन्द्र बड़ी देर तक नीचा सिर किये चुपचाप खड़ा रहा। उसका शरीर काँप रहा था। सोचते सोचते उसका क्रोध ठंडा हुआ। उसकी आँखों से दो बूँद आँसू टपक पड़े। फिर वह ठण्डी साँस लेकर धीरे धीरे बोला—स्वामीजी, मैं सचमुच बड़ा पापी हूँ। आप जो उचित समझें वह दण्ड मुझे दें।

शैलेश्वर—वत्स ! इस संसार में ऐसा कोई रोग नहीं जिसकी चिकित्सा न हो और ऐसा कोई पाप नहीं जिसका प्रायश्चित्त न हो। मैं तुम्हारे पाप का संशोधन चाहता हूँ, न कि तुम्हारे पाप का दण्डविधान।

नरेन्द्र—महाराज ! मैं दया के उपयुक्त पात्र नहीं हूँ। जो पापिष्ठ हेमलता के सदृश पवित्र मूर्त्ति के अपकार की इच्छा करे उसका इस जीवन में प्रायश्चित्त नहीं।

शैलेश्वर—नरेन्द्र, तुम अपने को जितना पापी समझते हो असल में उतने नहीं हो। मुझसे तुम्हारी कोई बात छिपी नहीं है। तुम हेमलता को पाने की इच्छा नहीं रखते। केवल उसे एक बार फिर इस ज़िन्दगी में देखना चाहते हो। यह आशा तुम्हारी पूरी होगी या नहीं, यही जानने के लिए तुम इस देवालय में आये थे। किन्तु अभी तुम बालक हो। तुम यह नहीं जानते कि अब एक बार उस पर तुम्हारी दृष्टि पड़ने से उसका सर्वनाश होने की सम्भावना है।

नरेन्द्र—आपने जो कुछ फ़रमाया, बहुत सही है। हेमलता की हानि करना तो दूर रहा, हम उसके पसीने की जगह अपना ख़ून तक दे सकते हैं। उसके शरीर का काँटा निकालने के लिए हम प्राण दे सकते हैं। इसे अन्तर्यामी भगवान् जानते हैं।

शैलेश्वर—तो उसके हृदय में तुमने जो काँटा चुभा रक्खा है, उसको खींच लेने का प्रयत्न क्यों नहीं करते ?

नरेन्द्र—कैसे प्रयत्न करूँ ? प्रभो, आज्ञा दीजिए।

शैलेश्वर—लड़कपन से ही तुम उसके कोमल हृदय में जो प्रेम का काँटा लगा चुके हो उसे निकाल लो। अभी न निकाल लोगे तो उसकी जड़ दिन पर दिन मज़बूत ही होती जायगी। हेमलता का जीवन, जीवन की गिनती में न रहेगा। उसको अब सुचरित्र धार्मिक पति मिल गया है। सुख के संसार में अभी उसने पैर ही रक्खा है। केवल कभी कभी उसके मन में तुम्हारी चिन्ता होती है। जिस समय वह तुम्हारा सोच करती है उस समय अपने पति के निकट विश्वासघातिनी बन जाती है। उसकी चिन्ता तुम दूर कर दो।

नरेन्द्र—कैसे दूर करूँ ? आप कहते हैं, मेरे देखने ही से उसका सर्वनाश होगा।

शैलेश्वर—उसका उपाय है। यह तो तुम भली भाँति जानते हो कि किसी न किसी दिन हेमलता के साथ हमेशा के लिए तुम्हारा विच्छेद होगा ही। नरेन्द्र, यदि तुम हेमलता को सच्चे दिल से प्यार करते हो, यदि उसके कण्टकोद्धार के लिए तुम यथार्थ में अपने प्राण दे सकते हो तो जितेन्द्रिय होकर स्त्री-विषयक चिन्ता का त्याग कर दो। और जो तुम इन्द्रिय का निग्रह न कर सको तो यवनबालिका से ब्याह कर लो। हेमलता जब यह सुनेगी कि नरेन्द्र मेरे बाल्यकाल के प्रेम को भूलकर योगी होगया है, या विधर्मी होकर दूसरी स्त्री पर आसक्त हो गया है तब उसके हृदय का भाव ज़रूर धीरे धीरे बदल जायगा। मनुष्य का हृदय इतना सरस नहीं होता कि लता की भाँति सूखे काठ में लिपटा रहे। जो अपने प्रेमी को एक-दम बिसरा देता है; जिसका मानसिक भाव, आशा, उद्देश, चिन्ता और प्रणय अन्य रूप धारण करते हैं, उस पर किसी का प्रेम चिर काल तक नहीं

बना रहता। नरेन्द्र! तुम्हारे विषम पाप का यही विषम प्रायश्चित्त है।

नरेन्द्र—भगवान् जानते हैं, मैं उसके उपकारार्थ अनेक क्लेश झेल सकता हूँ। किन्तु आपने मेरे पाप का जो प्रायश्चित्त बतलाया है, वह असह्य है। यह औषध बड़ी ही कड़वी है। कोई दूसरी दवा की व्यवस्था कीजिए।

शैलेश्वर—कठिन रोग में तीव्र औषध का ही प्रयोग आवश्यक है।

नरेन्द्र स्वामीजी! आप परम धार्मिक शैव होकर मुझे मुसलमान होने का परामर्श देते हैं?

शैलेश्वर—पाप के कारण मनुष्य को पशुजन्म तक ग्रहण करना पड़ता है। तुम केवल जातिच्युत होने ही में डरते हो?

इसके बाद दोनों बड़ी देर तक चुप रहे। नरेन्द्र गाल पर हाथ रख कर, आग के अँगारे की ओर निर्निमेष नेत्र से देखता हुआ, मन ही मन कुछ सोचने लगा। शैलेश्वर उस गुफा में धीरे धीरे टहलने लगा।

अन्त में शैलेश्वर ने बड़ी गम्भीरता से कहा—नरेन्द्रनाथ! तुम मुझ पर विश्वास करो।

नरेन्द्र—आप मेरी तलवार ले लें, इससे बढ़कर मैं अपने विश्वास का दूसरा क्या प्रमाण दे सकता हूँ।

शैलेश्वर—तो मैं एक बात और तुमसे कहता हूँ। सुनो, स्त्रियों का एक-मात्र अवलम्बन प्रेम है। वही स्त्रियों का जीवन है, और वही उनके प्राण का आधार है। किन्तु पुरुषों के लिए यह बात नहीं है। पुरुषों के लिए नारीप्रेम की अपेक्षा बहुत उच्च अभिलाषा और अनेक महान् उद्देश हैं। तुम अभी युवा हो, साहसी हो, और देशाभिमानी हो। क्या इस संसार में तुम अपने शस्त्र की सहायता से अपने अनन्य सुयश के मार्ग को परिष्कृत नहीं कर सकते? क्या अबलाओं की भाँति केवल रोकर

ही अपना जीवन व्यतीत करना चाहते हो? सुनते हैं, तुम्हारा वङ्गदेश वीरशून्य—प्रताप-शून्य—और यशःशून्य हो रहा है। जाओ नरेन्द्र! तुम उस दूर देश बङ्गाल में जाकर यशःस्तम्भ स्थापित करो; अपने देश और अपनी जाति का गौरव बढ़ाओ; सिंह के समान पराक्रम प्रकट कर अपनी कीर्ति स्थापित करो। इस महत्त्व के काम में तुम अपना जीवन समर्पण करो। स्वर्ग में कोई ऐसा देवता नहीं जो इस महत्त्व के कार्यसाधन में तुम्हारी सहायता न करें; स्वयं वज्रायुध पुरन्दर और शूलपाणि शङ्कर तुम्हारी मनोकामना पूर्ण करेंगे।

यह कह कर शैलेश्वर चुप हो रहा। नरेन्द्र टकटकी बाँध कर उस अद्भुत गुसाईं की ओर देखने लगा। उसने एक दिन इस गुसाईं को जैसा युद्ध-निपुण देखा था, वैसी ही निपुण आज मनुष्यों के अन्तःकरण की बात जानने में भी पाया।

गुसाईं फिर कहने लगा—नरेन्द्र! इस घोर निशा में तुम इतनी दूर एकलिङ्गेश्वर महादेव के मन्दिर में पूजा करने आये हो, बोलो किसलिए? देश के हित-साधन के लिए या वीरव्रत में व्रती होने के लिए? या कोई महान् इष्ट साधन की इच्छा से तुम यहाँ आये हो? धिक्कार है, नरेन्द्र तुम्हारी बुद्धि पर! तुम्हारे सदृश वीर पुरुष एक बालिका का मुँह देखने के लिए जीवन के एक महान उद्देश को भूल जाय, यह बड़े खेद का विषय है। नरेन्द्र, तुम अपने हृदय से प्रेम की चिन्ता को दूर करो। यदि विना प्रेम के जीवन निःसार जान पड़े तो वीरोचित प्रेम को हृदय में स्थान दो। पुरुषसिंह होकर सिंही को ग्रहण करो।

नरेन्द्र—प्रभो, आप जो आज्ञा दें।

शैलेश्वर—यह दुनिया बहुत बड़ी है, ढूँढ़ो। ढूँढ़ने से सब कुछ मिल सकता है। यदि ऐसी स्त्री ढूँढ़ने से मिले तो उसे स्वीकार करो जो कि पीड़ा के समय सावित्री की तरह तुम्हारी सेवा करे, जो सङ्कट के समय नृमुण्डमालिनी भद्रकाली की भाँति

तुम्हारी बग़ल में खड्ग लेकर खड़ी हो, और जो सुख के समय निश्छल प्रेम से तुम्हारे हृदय को तृप्त करे। युद्ध के समय जो वीरत्व-वर्धक गान से तुम्हारे शरीर को कण्टकित करे और जो अपूर्व उत्साह प्रदान करे ऐसी स्त्री के साथ तुम विवाह करो।

नरेन्द्र—क्या संसार में ऐसी स्त्रियाँ होती हैं?

शैलेश्वर—तुम उस रमणी को स्वयं देखोगे। मेरा आदेश मिथ्या न होगा। यदि ऐसी स्त्री मेरे देखने में न आती तो मैं तुमको इस गुफा में व्यर्थ क्यों बुला लाता? एक बात और सुनो। मैं जिस रमणी की बात तुमसे कह रहा हूँ वह हेमलता की अपेक्षा भी तुमको अधिक चाहती है। इस रमणी को तुम पहले देख चुके हो।

नरेन्द्र—कब देखा, स्मरण नहीं है।

शैलेश्वर—आज उसे तुम स्वप्न में देखोगे। मैं अब जाता हूँ। इस घड़े में जो मद्य है वह पीकर तुम आज यहीं सो रहो। इस बुझती हुई आग की ओर देखते रहो। जब वह आग सम्पूर्ण रूप से बुझ कर भस्मावशेष हो जायगी तब तुम स्वप्न देखोगे, स्वप्न में उस प्रणयिनी को देखोगे। वह इस संसार में एक-मात्र तुम्हारे प्रेम की आकांक्षिणी है। कर्तव्य-साधन में वह तुमसे कुछ कम अध्यवसाय नहीं रखती। वीर-पुरुष, वह वीर-नारी तुम्हारे योग्य है।

नरेन्द्र—महात्मन्, आपकी बातों से मेरा आश्चर्य्य पल पल पर बढ़ रहा है।

शैलेश्वर—एक बात और कहता हूँ, जी लगा कर सुनो। स्वप्न देखकर तुम कल सबेरे इस गुफा से निकल कर बाहर चले जाना। तीन दिन की तुम्हें मोहलत देता हूँ। स्वप्न में जिस स्त्री को देखोगे उसके साथ तुम ब्याह करोगे या नहीं, इसका निश्चय तुम तीन दिन के भीतर कर लेना। यदि तुम उसके साथ ब्याह करने को राजी हो तो आज से तीसरे दिन, अमा-

बस के सायंकाल, सफ़ेद चन्दन का तिलक लगा कर मुझसे इस गुफा में मिलना। वह बालिका कैसे प्राप्त होगी, उसका उपाय मैं बतला दूँगा। यदि उससे ब्याह करना मंजूर न हो तो लाल चन्दन का टीका माथे में लगा कर पूर्वोक्त निर्दिष्ट समय पर यहाँ आकर मुझसे भेंट करना। तब मैं तुम्हारे पाप के प्रायश्चित्त की व्यवस्था करूँगा। तुम ऐसा करने की प्रतिज्ञा करो, नहीं तो भगवती तुमको स्वप्न न देगी।

नरेन्द्र—मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि तीसरे दिन सन्ध्यासमय इस गुफा में आपसे मुलाकात करूँगा। इस विषय में जो आप करने के लिए आज्ञा देते हैं वह करने को मैं प्रस्तुत हूँ।

शैलेश्वर—तुम वीर-पुरुष हो। तुम जो कहोगे वह अवश्य करोगे। तीन पहर से ऊपर रात बीत चुकी, मैं अब जाता हूँ। यह कह कर शैलेश्वर चला गया।

चौबीसवाँ परिच्छेद

वीणाधारिणी

नरेन्द्र बहुत देर तक उस अँधेरी गुफा में घूमता रहा। वह बाल्यकाल की प्रीति को, और यौवन के नवीन प्रेम के बिरवा को सदा के लिए अपने हृदय से उखाड़ डालना चाहता है। नरेन्द्र का चित्त चिन्ता से डावाँडोल हो रहा था। उसके मन में क्या क्या भावनायें उत्पन्न हो रही थीं, यह हम लोग कैसे जान सकते हैं?

बहुत देर में जब आग बुझने पर हुई तब नरेन्द्र को गुसाईं की बात याद हो आई। घड़े में जो यज्ञावशिष्ट मद्य था, सब पी लिया। मद्य पीते ही उसका सिर घूमने लगा। आग के समीप वह एक तरफ़ लेट रहा।

नरेन्द्रनाथ यद्यपि नशे में चूर था तथापि उसकी दृष्टि आग की ओर थी। देखते देखते जब आग बुझने पर हुई तब नरेन्द्र को, बुझती हुई आग के क्षीण प्रकाश में, उस गुफा की शोभा और भी विलक्षण देख पड़ी। वह गुफा की भित्ति पर प्रकाश और छाया के नृत्य में मानो अमानुषिक जीव का नाच देखने लगा। कालिका के दोनों नेत्र चमक उठे। कालिका के हाथ का खड्ग मानो नरेन्द्र की ओर बढ़ने लगा। इससे नरेन्द्र डर गया, उसने उठने की चेष्टा की, पर उठने की शक्ति उसमें थी कहाँ। धीरे धीरे नरेन्द्र की आँख लग गई।

थोड़ी देर मैं सब आग बुझ गई पर नरेन्द्र ने यह न देखा। तब वह स्वप्न देख रहा था। इतनी देर तक दूरस्थ जल-प्रवाह की

भाँति जो शब्द सुन पड़ता था वह अब नरेन्द्र को मानो स्वर्गीय सङ्गीत-ध्वनि की तरह सुनाई देने लगा। गहरे अन्धकार में मानो धीरे धीरे प्रकाश की छटा फैलने लगी। उस गुफा की दीवार से मानो एक द्वार निकल आया। उस द्वार की राह से संगीत का अपूर्व शब्द आने लगा। सङ्गीत-ध्वनि के साथ मानो चन्द्रमा का प्रकाश भी, उस नवीन दर्वाज़े के रास्ते से धीरे धीरे गुफा के भीतर आने लगा। यह क्या? नरेन्द्र स्वप्न देख रहा है, या यथार्थ ही देख रहा है? अलौकिक रूप-राशि से विभूषित स्वर्गीय अप्सरा-सी एक षोडशी बालिका हाथ में वीणा लिये आ रही है। नरेन्द्र आश्चर्य से अभिभूत हो स्वप्न देखने लगा।

अहा हा! उस षोडशी का कैसा अनुपम रूप है, कैसे सुन्दर नयन हैं, कैसा प्रशस्त ललाट है, कैसे भौंरे से काले केश हैं और क्या ही कोमल कृश शरीर है। यह कोई देवी है या मानवी? नरेन्द्र! इस नाज़नी की ओर ख़ूब ध्यान से देखो। ऐसा चाँद-सा गोरा मुखड़ा, ऐसे कमल से आयत नेत्र, और ऐसा प्रवाल-सा लाल अधर, क्या इससे पहले तुमने कभी देखा था? दूरस्थ सूक्ष्म सङ्गीत-ध्वनि की भाँति नरेन्द्र के हृदय में स्मृतिशक्ति जाग्रत होने लगी। पहले उसको काशी के युद्ध का स्मरण हो आया, फिर दिल्लीवाले समर का। दिल्ली का स्मरण होते ही एक यवनबालिका की मूर्त्ति उसके सामने आ खड़ी हुई। फिर धक से उसे याद हो आई। अरे, यह तो ज़ुलेख़ा है!

नरेन्द्र को कुछ सोचने का अवसर न मिला। उस प्रेमोत्पादक सरस गीत ने नरेन्द्र के हृदय को पानी पानी कर दिया। उस अप्सरा के मधुर गान से पत्थर की गुफा भी मानो पसीज चली। ज़ुलेख़ा वीणा बजाने के साथ साथ तान भी ले रही थी। एक साथ उसका ऐसा सुन्दर गाना-बजाना सुन कर किसका चित्त द्रवित न होता? उसका वह मधुर हृदयाकर्षक और भाव-परिपूर्ण गान सुन कर नरेन्द्र का चित्त चञ्चल हो उठा। वह

निर्निमेष दृष्टि से .ज़ुलेखा की ओर देखने लगा। गाते गाते .ज़ुलेखा का कण्ठ रुक गया। वह रुक रुक कर गाने लगी। कुछ देर में उसका गाना खतम हुआ। उसकी आँखों से अविरल आँसुओं की धारा बह चली। .ज़ुलेखा ने जो तातार देश की भाषा में गीत गाया था उसका आशय यह था—

स्त्री का धर्म्म क्या है, पतिव्रता का कर्तव्य क्या है?—यही कि जब तक वह जिये, प्रेमामृत के दान से पति की प्रेमपिपासा को शान्त करे। सुख के समय गृहलक्ष्मी बन कर पूर्ण रूप से पति को प्रसन्न करे; युद्ध के समय चण्डीरूप धारण कर पति के उत्साह को बढ़ाती हुई उसके हृदय को वीर-रस से भर दे; जीवन के आशाप्रदीप जब एक एक कर बुझ जायँ तब विपत्ति के घोर अन्धकार में समवेदना प्रकट करके स्वामी को धैर्य्य दे और यथासाध्य उसके क्लेशों को दूर करने की चेष्टा करे। पति के सुन्दर शरीर-रूपी घोंसले से प्राणपखेरू उड़ जाने पर पतिव्रता नारी पति के साथ स्वर्ग जाने की तैयारी करे।

.ज़ुलेखा का गाना-बजाना कभी का खतम हो गया, पर नरेन्द्र के कानों में वह स्वर्गीय-ध्वनि अब तक उसी तरह गूँज रही है। नरेन्द्र को वह संगीत कभी तो अत्यन्त प्रिय लगता था, और कभी वज्रध्वनि से भी अधिक कठोर। वह मन ही मन सोचने लगाः—

.ज़ुलेखा मानवी है या परी! जो हो, नरेन्द्र बार बार उसके मुँह की ओर देखने लगा। "ज्यों ज्यों निहारत नेरे ह्वै नैननि त्यों त्यों खरी निकरै सी निकाई।"—यह किसी कवि की उक्ति बहुत ठीक है। नरेन्द्र ने पहले .ज़ुलेखा का जैसा सुन्दर स्वरूप देखा था उससे कहीं बढ़ कर अभी उसको उसका सौन्दर्य देख पड़ा। किन्तु उस विशेष सौन्दर्य के साथ उसके चेहरे पर सोच का चिह्न—पीलापन—भी झलक रहा था। देह पहले से कुछ खिन्न थी, नयनों में उदासी भरी थी। नरेन्द्र ने अभी उसके

चेहरे को भली भाँति देख भी न पाया था कि अपूर्व सङ्गीत-ध्वनि से फिर पर्वत की कन्दरा गूँज उठी। दुःख का गान सुनकर फिर नरेन्द्र का हृदय द्रवीभूत होने लगा।

गीत का आशय यह था—

पतिव्रता स्त्री अपने प्राणेश पति से क्या चाहती है? प्रेम! प्रेम-भिक्षा के सिवा वह इस संसार में और क्या चाहेगी? जो प्रेमलता की भाँति तुम्हारे पैरों में लिपट रही है उसे स्नेह-जल के कणों से जिलाओ, जिसमें मुरझा कर वह धरती पर न लोट जाय। जो अपने घरबार और भाई-बन्धु को छोड़ कर दूर देश से तुम्हारे शरण में आई है उसके लिए ऐसा करो जिसमें वह तुम्हारे सुख में सुख की और दुःख में दुःख की समभागिनी हो, तथा तुम्हारे पदपल्लव की छाया में विश्राम पावे। वह इसके सिवा अन्य भिक्षा नहीं चाहती। जितने दिन प्राण रहेंगे, यह दासी तुम्हारी सेवा करके अपने मान और जन्म को सफल करेगी। जिस दिन तुम इस संसार से कूच करोगे, यह दासी भी तुम्हारे साथ साथ जायगी।

गाना ख़तम हुआ। ज़ुलेखा के नयनों मे आँसू बहकर गालों को भिगोने लगे। धीरे धीरे चन्द्रमा का प्रकाश मानो बादल में छिप गया। जिस नये दर्वाज़े से गुफा के भीतर प्रकाश आता था वह बन्द हो गया। वह स्वर्गीय बालिका भी देखते ही देखते ग़ायब हो गई। उस घोर अन्धकार में वीणा का शब्द भी एकाएक रुक गया। नरेन्द्र को दूरस्थ जलप्रवाह की भाँति जो विलक्षण शब्द पहले सुन पड़ता था वही फिर सुनाई देने लगा, इस शब्द के अतिरिक्त न उसे अब कुछ उस अँधेरे में दीख पड़ता और न कुछ सुन ही पड़ता है। नरेन्द्र स्वप्नावस्था से सुषुप्ति अवस्था में आया। गाढ़ी नींद ने उसे बेख़बर कर दिया। स्वप्न में उसने और क्या क्या देखा, यह सबेरे जब उसकी आँखें खुलीं, स्मरण न रहा। वह आँखें मलता हुआ उठ खड़ा हुआ।

नशे का अब उसमें चिह्न-मात्र भी न रहा। वह हाथ में तलवार लेकर धीरे धीरे गुफा के बाहर आया। बाहर आकर उसने देखा, सूर्य की प्रातःकालिक कोमल किरणों में पेड़, पौदे, लता और दूब चमचमा रही है। पेड़ की डालों पर बैठ कर पक्षी चहचहा रहे हैं। वहाँ से कुछ अन्तर पर एकलिङ्गेश्वर महादेव का श्वेत-प्रस्तर-निर्म्मित मन्दिर सूर्य की नवप्रभा में बड़ा ही सुन्दर देख पड़ता है। उस मन्दिर की ओर बार बार देखने से भी नयन तृप्त नहीं होते। मन्दिर लोगों से भरा है। मन्दिर के चारों ओर बहुत दूर तक पर्वतों की शोभा हृदय को अलग ही अपनी ओर खींच रही है।

पच्चीसवाँ परिच्छेद

खड्गधारिणी

नरेन्द्र के वे तीन दिन कैसे कटे ? चिन्ताजाल में फँसकर वह जाग्रत् अवस्था में ही कैसे कैसे भयङ्कर दुःस्वप्न देख रहा था, चिन्ताओं के भार से उसका कोमल हृदय किस तरह चकनाचूर हो रहा था ?—इसका वर्णन नहीं हो सकता। सैकड़ों चिन्तायें सौ बिच्छुओं की भाँति एक साथ नरेन्द्र के हृदय पर डङ्क मारने लगीं। सैकड़ों तरह की चिन्ताओं ने उसके हृदय में मानो सैकड़ों छेद कर डाले।

उस पर्वत की गुफा में शैलेश्वर ने नरेन्द्र को जो कुछ आज्ञा दी थी वह अब तक उसके हृदय-पट पर अङ्कित है। रमेशचन्द्र के साथ हेमलता का ब्याह होने की बात, बहुत दिन हुए, नरेन्द्र सुन चुका है। हेमलता दूसरे की अर्धाङ्गिनी हो गई, तब उसका सोच करना या उस पर प्रेम रखना क्या उचित है ? नरेन्द्रनाथ ! यह क्या वीर पुरुषों का काम है ? गुसाईं बाबा का महान् आदेश ग्रहण करो, प्रेम की चिन्ता को हृदय से दूर करो, यश के पथ को साफ़ करो, और देश का गौरव बढ़ाओ। इससे बढ़ कर वीरों का कर्तव्य और क्या है ? नरेन्द्र ने भली भाँति सोच-विचार कर निश्चय किया कि गुसाईं की आज्ञा शिरोधार्य है।

नरेन्द्र को फिर हेमलता की याद हो आई। उसने गङ्गातट से बिदा होते समय, नक्षत्रों के ईषत्प्रकाश में, जो मुरझाया हुआ मुख-कमल देखा था, वह उसकी आँखों के सामने आकर नाचने लगा। नरेन्द्र का सारा शरीर कण्टकित हो उठा।

हेमलता ने उसके साथ बाल्यकाल में जो खेल खेले थे वे एक एक कर उसको याद आने लगे। जिस दिन नरेन्द्र घरबार त्याग कर विरक्त हो चला था उस दिन हेम अपने प्राण को उसके साथ कर देना चाहती थी। बाल्यावस्था में हेम नरेन्द्र को ही अपने हृदय का सर्वस्व समझती थी। वह छाया की तरह नरेन्द्र के साथ फिरा करती थी। यौवन के प्रारम्भ में हेमलता सुबह-शाम जब तक एक बार नरेन्द्र को नहीं देख लेती थी तब तक उसे चैन नहीं पड़ता था। नरेन्द्र को देखते ही उसके हृदय का उद्वेग शान्त हो जाता था। इस तरह की हजारों बातें नरेन्द्र के हृदय को मथित करने लगीं। नरेन्द्र से अब न रहा गया। वह मन्दिर के एक तरफ एकान्त में बैठ कर चुपचाप रोने लगा। उसकी आँखों से आँसू की धारा बह चली।

फिर नाना प्रकार की चिन्तायें उसके चित्त में उदित होने लगीं। नरेन्द्र का न घर है, न बन्धु-बान्धव है, और न परिवार है। वह अकेला देश देश घूम रहा है। केवल हेमलता की चिन्ता ही उसके जीवन का एक-मात्र आधार है। इस संसार-समुद्र में हेमलता ही उसके प्राणों का एक-मात्र अवलम्ब है। हेमलता की चिन्ता के सिवा नरेन्द्र के पास और क्या बच रहा है? निर्दय, शिवभक्त शैलेश्वर! तुम इस अभागे की एक-मात्र सुखचिन्ता, एक-मात्र सुखस्वप्न का हरण न करो। "हेमलता की चिन्ता को मेरे चित्त से हटाने की चेष्टा न करो। ऐसी आज्ञा न दो जिससे मैं अपनी बालप्रणयिनी को सदा के लिए भूल जाऊँ।" नरेन्द्र ने बड़े बड़े क्लेश सहे हैं, और भी जो दुःसह क्लेश सहने की आज्ञा दोगे, सहने के लिए नरेन्द्र तैयार है। नरेन्द्र रणभूमि में शस्त्र परित्याग कर शत्रु के पैरों पर गिर सकता है, वीरता को तिलाञ्जलि दे सकता है, और अन्न-जल के कष्टों को सह सकता है; वह निन्दा का भार वहन कर सकता है तथा बस्ती छोड़कर घोर जंगल में सिंह और बाघ आदि

हिंसक जन्तुओं के साथ रह कर जीवन बिता सकता है। शैलेश्वर! इन सबों से यदि नरेन्द्र के पाप का प्रायश्चित्त हो तो आप आज्ञा दीजिए, वह आपकी आज्ञा को सिर चढ़ावेगा। इसमें यदि क्षण भर के लिए भी वह आनाकानी करे तो करालवदना काली के सामने उसका शिरश्छेद कर देना। किन्तु बाल्यकाल से जिस चिन्ता का आश्रय करके नरेन्द्र अब तक जीवित है, जिस चिन्ता के प्रकाश में वह इस अन्धकारमय जीवन को लिये हुए देश-देश घूम रहा है, उस चिन्ता को—दूर करने की आज्ञा न दो। यह सच है कि हेम अब दूसरे की गृहिणी हो गई है, तथापि उसके प्रेम की भावना नरेन्द्र के हृदय से दूर नहीं होती। भला यह कब हो सकता है कि हेम को भूलकर नरेन्द्र यवनकन्या के साथ ब्याह करके यवन होगा? हेम यह सुनेगी। यह सुनकर वह घृणा करेगी। नरेन्द्र को यह क्योंकर सह्य होगा? वञ्चक पुजारी! हिन्दू-कुल-पूज्य गुसाईं होकर तुम मुसलमान से ब्याह करने का उपदेश देते हो! विधर्मी, कपटाचारी, दूर हट जाओ। फिर कभी मेरे सामने ऐसा प्रस्ताव न करना।

नरेन्द्र को फिर शैलेश्वर के गौरवपूर्ण आदेश का स्मरण हो आया। शैलेश्वर का यह कथन ज्यों का त्यों उसको याद हुआ—"हा नरेन्द्र, अपने को न भुलावो और न मुझी को भुलावा देने की चेष्टा करो। जिस घोर पाप में लिप्त हुए हो उसको भली भाँति मन में सोचो।" गुसाईं ने क्या झूठ कहा है? परस्त्री की चिन्ता क्या पाप नहीं है? नरेन्द्र, सावधान! तुम पाप में लिप्त हो रहे हो। गुसाईं तुम्हारा दोष दिखला रहा है। उसकी निन्दा मत करो। इस प्रकार बार बार सोच कर भी नरेन्द्रनाथ कुछ स्थिर न कर सका कि क्या करना चाहिए।

तीसरे दिन साँझ को नियत समय से एक घण्टा पहले ही नरेन्द्रनाथ गुफा के द्वार पर जा खड़ा हुआ। कुछ देर तक ठहर

कर वह चुपचाप इधर-उधर टहलने लगा। बीच बीच में खड़ा होकर कभी स्थिर दृष्टि से आकाश की ओर देखता और कभी घूम फिर कर उसी गुफा के द्वार पर आकर खड़ा हो जाता है। हाथ में नङ्गी तलवार है, चेहरे पर गम्भीरता छाई हुई है।

कुछ ही देर में शैलेश्वर वहाँ आया। नरेन्द्रनाथ गोस्वामी को प्रणाम करना भूल गया, पर गुसाईं आशीर्वाद देना नहीं भूला। उसने आशीर्वाद देकर पूछा—तुम दृढ़प्रतिज्ञ हुए हो?

नरेन्द्र ने किञ्चित गम्भीर किन्तु कर्कश स्वर में कहा—जी हाँ।

दोनों गुफा के भीतर गये।

गुफा के भीतर पूर्व दिन की भाँति उजेला हो रहा था। निर्धूम आग के प्रकाश में शैलेश्वर ने जो कुछ देखा, उससे उसको चकित होना पड़ा।

नरेन्द्रनाथ का ललाट, कपोल, कन्धे, बाँह और छाती आदि सर्वाङ्ग रक्तचन्दन से पुता हुआ है।

शैलेश्वर—पापिष्ठ! तुम परस्त्री के प्रेमोपभोग की इच्छा नहीं तज सके?

नरेन्द्र—मेरे मन में प्रेमोपभोग की इच्छा नहीं है।

शैलेश्वर—क्या हेमलता की चिन्ता तुम्हारे मन से हट गई? क्या तुम उसे अब इस ज़िन्दगी में देखना नहीं चाहते?

नरेन्द्र—मैं यह स्वीकार करने को प्रस्तुत हूँ।

शैलेश्वर—अच्छा, यह बताओ, यवनकन्या से ब्याह करने को राज़ी हो?

नरेन्द्र—नहीं, इस ज़िन्दगी में यह मुझसे न होगा।

शैलेश्वर कुछ देर ठहरकर बोला—तो प्रतिज्ञापालन के लिए तैयार हो, तलवार रख दो। काली के सम्मुख जीवन-दान के हेतु तैयार हो।

नरेन्द्र—मैंने जो प्रतिज्ञा की थी, उसका पालन किया। आपसे भेंट करने का ही तो वादा किया था।

शैलेश्वर—सिंह की गुफा में आकर भी जीने की आशा बनी है? यहाँ कौन तुम्हारी सहायता करेगा?

नरेन्द्र—यह खड्ग।

शैलेश्वर—चुपचाप गुफा के किसी गुप्त स्थान से एक तलवार ले आया। उदयपुर में एक दफे जैसा युद्ध हुआ था आज फिर दोनों में वैसा ही युद्ध हुआ। नरेन्द्र उस दिन की अपेक्षा आज बड़ी सावधानी और बड़े यत्न से लड़ने लगा। किन्तु उसका सब यत्न वृथा हुआ। सिंह के समान पराक्रमी गुसाईं ने थोड़ी ही देर में नरेन्द्र को परास्त करके उसकी तलवार छीन ली।

शैलेश्वर—केवल गुसाईंगिरी ही में ये बाल सफेद नहीं हुए हैं। राजस्थान की भूमि वीरप्रसविनी है। युद्ध के समय गुसाईं लोग भी वीरता दिखलाने में नहीं चूकते। तुम बालक हो, तुम्हारे साथ मैंने युद्ध किया, मेरे लिए यही बड़ा भारी कलङ्क है।

नरेन्द्र—मैं जीवनदान के लिए भी प्रस्तुत हूँ। तुम्हारी जो इच्छा हो, करो।

शैलेश्वर ने एक रस्सी निकाली। उस रस्सी से नरेन्द्र के दोनों हाथ खूब ज़ोर से कस कर बाँधे। इतने कसकर बाँधे कि नरेन्द्र के हाथ की नसें सिकुड़ गईं तो भी वह कुछ न बोला। फिर शैलेश्वर ने नरेन्द्र के मुँह के पास मद्य का बर्तन रखकर पीने को कहा। नरेन्द्र ने मद्य पी लिया। तदनन्तर गोस्वामी गुफा से बाहर चला गया।

मद्य पीते ही नरेन्द्र की आँखें घूमने लगीं। कुछ देर में बेहोश होकर वह धरती पर गिर पड़ा। उसकी आँखों के सामने अँधेरा सा छा गया। उसको मालूम होने लगा, जैसे गुफा के पास दो आदमी आपस में धीरे धीरे कुछ बातें कर रहे हों।

सुनते ही सुनते नरेन्द्र मदिरा के प्रभाव से सो गया। फिर क्या हुआ, उसे कुछ मालूम नहीं।

नरेन्द्र सोने को सो तो गया पर नींद अच्छी न आई। वह सारी रात स्वप्न ही देखता रहा। कभी स्वप्न देखता था, कभी अर्द्धनिद्रित की भाँति अधखुली आँखों से ताक कर करवटें बदलता था, और कभी कुछ देर के लिए जाग भी जाता था, पर बेहोशी के मारे कुछ निश्चय नहीं कर सकता था कि किस हालत में है।

बहुत देर बाद उसको मालूम हुआ कि जैसे एक दिन पहले गुफा के भीतर निविड़ अन्धकार में एकाएक प्रकाश की छटा देख पड़ी थी, वैसे आज भी देख पड़ी। आज भी उसी तरह गुफा के अपूर्व द्वार से एक षोडशी का प्रवेश हुआ। चाँदनी के सदृश विमल प्रकाश में वह चन्द्रमुखी शोभायमान होने लगी, किन्तु आज वह न कुछ गाती है न कुछ बजाती है, और न उसके हाथ में वीणा ही है। हाँ, उसके हाथ में एक तलवार ज़रूर है। आज वह गुफा में खड्गधारिणी होकर आई है।

आज वह साक्षात् चण्डी सी दीख पड़ती है। उसकी ऐसी भयङ्कर मूर्त्ति देख कर कौन कह सकता है कि यह वही मनोहारिणी ज़ुलेखा है! क्रोध से उसका समस्त मुखमण्डल लाल हो गया है। उसकी आँखों से आग की चिनगारियाँ निकल रही हैं। अधर को वह दाँतों से दबाये हुए है और चोली के अन्दर एक तीक्ष्ण कटार छिपाये हुए है। उसके हाथ में गुसाईं-वाली वही कराल तलवार है। उसे देख कर नरेन्द्र विस्मित हुआ। उसके ललाट से पसीना बह चला। उसने उठने की चेष्टा की, किन्तु स्वप्न में विपदापन्न व्यक्ति की तरह वह न तो उठ सका और न वहाँ से भाग ही सका।

वह वामलोचना करकमल में लम्बी तलवार लिये गुफा के भीतर आई और एक बार ठिठक कर खड़ी हुई; एक बार नरेन्द्र

के मुँह की ओर देखा। उसके हाथ से तलवार छूट कर गिर पड़ी।

इस दफ़े उसने आँचल के भीतर से एक तेज़ कटार निकाली, और बड़ी धीरता से उस कटार को नरेन्द्र की छाती पर रक्खा। फिर न मालूम क्या सोच कर उसने वह कटार नरेन्द्र की छाती पर से उठा ली। अब वह मन ही मन कुछ सोचने लगी। कटार उसके हाथ से छूट कर नीचे गिर गई। वह बालिका धीरे धीरे वहाँ से चली गई।

डर से नरेन्द्र चीत्कार करके उठ बैठा। उसकी नींद जाती रही। उसने देखा कि सारा बदन पसीने से तरबतर हो रहा है। नशा अब नाम-मात्र को भी नहीं रह गया है। गुफा में सन्नाटा छाया है। अँधेरे में कहीं कुछ दिखाई नहीं देता। वह धीरे धीरे गुफा से बाहर निकल आया। देखा कि रात बीत चली, पूरब की ओर आकाश में लालिमा छाई है। दो एक तारे अब भी, बुझते हुए दिये की भाँति, टिमटिमा रहे हैं। प्रातःकाल की ठंढी हवा मन्द मन्द बह रही है। खिले हुए फूलों की सुगन्ध से दसों दिशायें आमोदित हो रही हैं। पक्षी अपने मधुर गान से उपवन की निस्तब्धता भङ्ग कर रहे हैं।

छब्बीसवाँ परिच्छेद

श्यामनगर की लड़ाई

पूर्वोक्त घटना के कुछ दिन बाद जोधपुर के महाराज यशवन्तसिंह ने फिर चतुरङ्गिणी सेना के साथ सजधज कर औरंगज़ेब के साथ युद्ध करने की अभिलाषा से आगरे की तरफ़ कूच किया। नरेन्द्र ने भी उस सेना के साथ राजस्थान से प्रस्थान किया। नरेन्द्र जो कई महीने तक उदयपुर में रह गया था, उस बीच में आगरे में एक राजविप्लव हो गया था। आगरे में न अब वे बादशाह हैं और न अब बादशाही सलतनत है। इसलिए उस विप्लव की कुछ बात संक्षेप में यहाँ कह देना आवश्यक है। जो पाठक इतिहास-वेत्ता हैं और उस विप्लव की बात जानते हैं, वे इस परिच्छेद को न भी पढ़ें तो कोई हर्ज नहीं।

इस भयङ्कर भ्रातृ-विरोध के आरम्भ होने पर पहले काशी के युद्ध में सुलतान शुजा और उसके बाद उज्जयिनी की लड़ाई में राजा यशवन्तसिंह परास्त हुए। यह पहले कहा जा चुका है। शेष घटना की बात सुनकर, अर्थात् यशवन्तसिंह के पराजय का वृत्तान्त सुन कर, बादशाह शाहजहाँ के ज्येष्ठ पुत्र दारा अत्यन्त क्रुद्ध होकर एक लाख से कुछ अधिक सेना साथ ले स्वयं युद्ध करने चले और चम्बल नदी के किनारे शिविर स्थापित कर मुराद तथा औरंगज़ेब के आने की प्रतीक्षा करने लगे।

निदान कुछ दिनों में वे लोग भी इस नदी के दूसरे किनारे पर आ पहुँचे। मुराद जैसे साहसी थे वैसे ही युद्ध-विद्या में चतुर थे। उन्होंने नदी पार होकर युद्ध करने की सलाह दी, किन्तु

कपटयुद्ध में प्रवीण औरंगज़ेब ने ऐसा न करके दारा को धोखा देने की इच्छा से शिविर को तो वहीं छोड़ा और आप चुपचाप सेना-सहित नदी के किसी औघट घाट से पार हो आगरे से सात आठ कोस पर यमुना नदी के किनारे श्यामनगर नामक गाँव में जाकर ठहर गया। "दुश्मनों ने चम्बल नदी पार होकर आगरे के समीप यमुना नदी के तट पर छावनी डाली है।" यह सुनकर दारा एक-दम अचम्भे में आ गये। उन्होंने उसी घड़ी अपनी सेना ले उस गाँव के पास यमुना-किनारे अपनी छावनी डाली।

श्यामनगर के युद्ध का फल था—भारतवर्ष का राजसिंहासन। जो विजयी होगा वह बादशाही ताज से अपने मस्तक को अलंकृत करेगा। दोनों दलों में किसी का साहस अग्रसर होने का नहीं होता था। दोनों दल अपनी अपनी जगह यथास्थित थे। चार दिन तक दोनों दल परस्पर आक्रमण की प्रतीक्षा करते रहे। पाँचवें दिन लड़ाई शुरू हुई। उस युद्ध के विशेष वर्णन की यहाँ कोई आवश्यकता नहीं। दारा के बाईं ओर राजपूत राजा रामसिंह और चतुरशाल बड़ी वीरता के साथ युद्ध करके हत हुए। दारा के दक्षिण पार्श्व में करीमउल्ला नामक मुसलमान सेनापति था जो औरंगज़ेब से मिला हुआ था। अतएव उसने दारा के साथ विश्वासघात कर युद्ध से एक-दम मुँह फेर लिया। आख़िर औरंगज़ेब की जीत हुई।

कपटपटु औरंगज़ेब ने युद्धक्षेत्र में क़रीमउल्ला का पूरा सम्मान किया और मुराद को भारतवर्ष का सम्राट् कहकर उसके हृदय को गद्गद कर दिया।

कुछ ही दिनों में औरंगज़ेब ने छल, बल और कौशल से आगरे को हस्तगत करके पिता (शाहजहाँ) को क़ैद कर लिया। शाहजहाँ की छोटी लड़की, रोशनआरा, औरंगज़ेब को गुप्त से गुप्त ख़बरें पहुँचा कर उसकी पूरी सहायता करती थी। जब से

औरंगज़ेब की जीत हुई तब से रौशनआरा के प्रभुत्व और क्षमता की सीमा न रही। शाहजहाँ की बड़ी लड़की जहानआरा रूप, गुण और कला-कौशल में अपनी छोटी बहन से बढ़ी चढ़ी थी। उस लावण्यमयी शाहज़ादी को पाठकगण एक दिन बेगम महल में देख चुके हैं। औरंगज़ेब की जीत से जहानआरा का सारा गुण-गौरव जाता रहा। वह बेचारी पिता की सेवा में रहकर जीवन का शेष भाग बिताने लगी।

आगरे को हस्तगत करके औरंगज़ेब दिल्ली को रवाना हुआ। जब वह मथुरा पहुँचा तब उसने मुराद को बुला भेजा। मुराद वहा पहुँच कर आमोद-प्रमोद में मग्न होगया। मद्यपान और रंडियों के गाने-बजाने के पीछे वह पागल बन बैठा। वे वारांगनायें चारों ओर से मुराद को घेर कर बैठ गईं। मुराद, उन्मत्त की भाँति, लज्जा को तिलाञ्जलि दे एक नवयौवना सुन्दरी को अपने सीने से लिपटा कर बेहोश हो गया। औरंगज़ेब तो इस अवसर को ढूँढ़ ही रहा था। उसने झट मुराद को क़ैद कर कारागार में भेज अपना अभीष्ट सिद्ध किया।

इसके अनन्तर क्या हुआ? यही कि औरंगज़ेब ने राजच्छत्र धारण कर सम्राट् का आसन ग्रहण किया। दारा सिन्धु नदी की ओर भागा। सुलतान शुजा वङ्गदेश से फिर सेना साथ ले युद्ध करने आया। जोधपुर के राजा यशवन्तसिंह के जी से पराजय की ग्लानि अब भी दूर नहीं हुई थी। वे भी सेना लेकर औरंगज़ेब पर चढ़ आये।

सत्ताइसवाँ परिच्छेद

दर्पण में अपूर्व प्रतिबिम्ब

कई दिनों के सफ़र के बाद यशवन्तसिंह की सेना आगरा शहर में आ पहुँची। औरंगज़ेब का प्रभाव इतना बढ़ गया था कि उसके साथ आमने सामने खुलकर युद्ध करना यशवन्तसिंह के साहस के बाहर की बात थी। इसलिए वे सुयोग की अपेक्षा करने लगे। औरंगज़ेब के परम शत्रु ने मित्र का स्वरूप धारण कर आगरा शहर के भीतर प्रवेश किया।

यमुना नदी की अपार शोभा और आगरे का अपूर्व सौन्दर्य देखकर कौन ऐसा है जो मोहित न होगा? संगमर्मर का बना हुआ, अपूर्व कारू-कौशल का नमूना, अनुपम ताजमहल सन्ध्या-समय नीलाकाश में एक अलौकिक शोभागृह की भाँति शोभायमान हो रहा है। उसके चारों ओर क्या ही सुन्दर सड़कें, उपवाटिकायें, और फ़व्वारे हैं। पास ही श्यामा तरल-तरङ्गिणी यमुना नदी है। आगरे का क़िला भी देखने ही योग्य है। उसके भीतर संगमर्मर की बनी हुई अत्यन्त सुन्दर मोतीमसजिद, दीवानेख़ास, दीवानेआम, रङ्गमहल और सीसमहल आदि अनेक ऐसे रमणीय सुन्दर भवन हैं जिनके सौन्दर्य का वर्णन करना कठिन है। आगरे की शोभा कहाँ तक बरनी जा सकती है? जिन्होंने आगरा शहर नहीं देखा उन्हें एक बार उसे ज़रूर देख लेना चाहिए।

आज प्रसिद्ध मयूर-सिंहासन पर बादशाह औरंगज़ेब बैठा है। प्रासाद के सुविशाल सफ़ेद खम्भे अपूर्व शोभा दे रहे हैं।

गुलाबी रङ्ग के चँदोवे की कोर में चारों ओर मोतियों की झालरें लटक रही हैं। उन झालरों के साथ भाँति भाँति के फूलों की माला अपनी एक न्यारी ही शोभा दिखला रही है। सिंहासन के चारों ओर राजा, महाराजा, अमीर, उमरा और मनसबदार आदि भारत के प्रसिद्ध प्रसिद्ध वीर, धीर, मानी, धनी लोग अदब से खड़े होकर सम्राट्-सभा की शोभा बढ़ा रहे हैं।

उस प्रासाद के सामने एक बहुत बड़ा खेमा खड़ा है। उसके चारों ओर चांदी के खम्भों के साथ कनातें घिरी हैं। खेमे के ऊपर का कपड़ा सफेद है। भीतर मसलीपट्टन की छींट है। उस छींट में ऐसे सुन्दर फूल-पत्ते और लतायें चित्रित हैं जिन्हें बाहर से देखनेवाले यही समझते हैं कि खेमे के भीतर यथार्थ ही फूल खिले हैं। नीचे मखमली ग़लीचा बिछा है। उस पर फूलों की पँखड़ियाँ इस प्रकार सजी हैं कि शिविरस्थ व्यक्ति के चलने में तकलीफ न हो। इतने पर भी वह व्यक्ति पुष्पास्तरण पर टहलने में इसलिए हिचकता है कि फूलों से कहीं पैर न छिल जायँ।

उसके बाहर क़िले तक विजय-पताका और तोरण-बन्दनवार आदि माङ्गलिक वस्तुएँ अनेक प्रकार से सुसज्जित हैं। सेना श्रेणीबद्ध होकर विजयवाद्य से सबके मन को उत्तेजित कर रही है। प्रातःकालिक सूर्य की किरणों में सेना की बन्दूकें और तलवारें चमचमा रही हैं। क़िले की दीवार पर अँगरेज़, फरासीसी और गोलन्दाज़ सैनिक दनादन तोप छोड़ रहे हैं। वे लोग बहुत दूर से रत्न बटोरने के लिए रत्नगर्भा भारतभूमि में आये हैं और बादशाह से वेतन पाकर आज तोप की आवाज़ से बादशाह के विजय की घोषणा कर रहे हैं। क़िले के बाहर, शहर के भीतर सड़कों पर, घर, दर्वाज़े, यमुना के किनारे—जहाँ देखिए वहीं—झुंड के झुंड लोग पोशाक पहने दिखाई देते हैं। तमाम आगरा शहर लोगों से खचाखच भरा हुआ है।

पुरानी रीति के अनुसार औरंगज़ेब सोने की तुला पर चढ़ा। इसके बाद प्रधान प्रधान अमीर-उमरा सोने के बराबर तोले गये। फिर सभी ने अपने वित्तानुसार सोने के सिक्के और जवाहरात नज़राना दाखिल करके बादशाह को प्रसन्न किया।

इसके अनन्तर विश्वविमोहिनी वेश्याओं ने, यौवनमद से उन्मत्त होकर, अपूर्व गान और नाच से सभासदों के हृदय को विमोहित किया। नर्तकी बड़े बड़े अमीरों के यहाँ शादी वग़ैरह उत्सवों में नाचने-गाने के लिए अकसर बुलाई जाती थीं। शाहजहाँ उन रण्डियों को अपने पास रखते थे और बहुत कुछ उनकी ख़ातिर करते थे। कभी कभी उन्हें अपने साथ बेगमों के महल में भी ले जाते थे। किन्तु नीरस-हृदय, औरंगज़ेब उन सबों को अपने पास फटकने नहीं देता था। इसलिए आज जलसे के दिन वे बड़ी खुशी से गा-बजा कर अमीरों को रिझा रही हैं।

वेश्याओं के गाने-बजाने के अनन्तर क़िले के पूरब ओर, अर्थात यमुना के किनारे, सरकस और दंगल होने लगे। दंगल के लिए वह जगह इसलिए चुनी गई जिसमें बेगमें अपने अपने कोठे पर से तमाशा देख सकें। पहलवानों की कुश्ती आदि होने के बाद दो मतवाले हाथियों की लड़ाई शुरू हुई। बीच में अन्दाज़न दो हाथ ऊँची एक मिट्टी की दीवार थी। उसके दोनों तरफ़ से दो मत्त हाथी, महावत के द्वारा प्रेरित होकर, लड़ने लगे। यमुना के दोनों किनारों से तमाशबीन लोग आश्चर्य के साथ यह भयङ्कर युद्ध देखने लगे। दोनों हाथियों में बड़ी देर तक लड़ाई होती रही। सूँड़ और दाँतों के आघात से दोनों हाथियों का मस्तक और शरीर क्षत-विक्षत हो गया। एक एक हाथी पर दो दो महावत थे। एक हाथी का एक महावत नीचे गिर गया। गिरते ही हाथी ने उसे कुचल कर मार डाला। दूसरे हाथी पर के एक महावत का हाथ इस तरह टूटा कि फिर

जुड़ने का नहीं। इन्हीं अभागे महालोभी महावतों ने जीवन की आशा त्याग करके दोनों हाथियों को युद्ध में प्रवृत्त किया था। धन के लोभ से ये अपने पुत्र-कलत्र से जन्म भर के लिए बिदाई लेकर आये थे। बहुत देर तक युद्ध होने के बाद एक हाथी दूसरे को परास्त करके, मिट्टी की दीवार लाँघ कर, उस पराजित हाथी के पीछे दौड़ा। वह भाग चला। विजयी मत्त-मातंग को उसका पीछा करते देख कर लोग उसको रोकने के लिए भांति भांति की तरकीबें करने लगे। जहाँ तहाँ आतशबाज़ी आदि छूटने लगी, किन्तु वह ऐसा क्रोधान्ध हो रहा था कि इस भयानक अग्नि-लीला पर कुछ लक्ष्य न देकर बराबर उसके पीछे दौड़ता ही गया। आख़िर वह पराजित हाथी तैर कर यमुना पार हो गया। रास्ते में सामने जो दो-एक लोग पड़े वे उस आक्रमणकारी हाथी के पाँव तले कुचल गये।

नरेन्द्रनाथ यह सब अद्भुत कौतुक देखता हुआ यमुना-किनारे गया। वहाँ भली भांति मुँह-हाथ धोकर एक वृक्ष के नीचे लेट रहा। जहाँ नरेन्द्र लेटा था वह जगह बड़ी रमणीय थी। सुविशाल तमाल वृक्ष के ऊपर दो एक पक्षी, मानो दिन के प्रचण्ड आतप से सन्तप्त होकर, धीमे स्वर से बोल रहे थे। उस पेड़ के पास ही एक तरफ़ पुरानी क़ब्र थी, जो बेमरम्मत होने के कारण टूटी फूटी अवस्था में पड़ी थी। उसके पत्थर कहीं कहीं फूट गये थे। उस क़ब्र पर पीपल के पेड़ और छोटे छोटे पौदे तथा लतायें जम गई थीं। क़ब्र के एक पार्श्व में फ़ारसी लिपि में कुछ लिखा था। उसका भावार्थ यही था—"मित्र, मेरा नाम जानने की क्या आवश्यकता है? मैं संसार में निपट अभागिनी और चिरदुःखिनी थी। यदि तुम भी हतभाग्य हो तो यहाँ बैठकर मेरे लिए दो बूँद आँसू बहा देना।" यमुनातट की मन्द मन्द शीतल हवा उस शीतल स्थान को और भी

सुशीतल कर रही थी। कल कल शब्द से यमुना का प्रवाह अविरत बह रहा था। नरेन्द्रनाथ शीघ्र ही सो गया।

वह कितनी देर तक सोता रहा, इसका वह निश्चय नहीं कर सका। निद्रित अवस्था में उसने एक विचित्र स्वप्न देखा। उसे ज्ञान पड़ा जैसे उस क़ब्र से मरा हुआ आदमी जीकर बाहर निकल आया है। वह एक मुसलमान युवती है। मृत्यु के पीछे की सफ़ेदी उस स्त्री के मुँह पर अब भी झलक रही है। उसकी दोनों आँखें भीतर को धँसी हुई हैं, देह अत्यन्त दुर्बल है। उसकी आकृति से दुःख का भाव झलक रहा है। क़ब्र में जो कुछ लिखा था, उसे वह औरत मानो करुणा-भरे स्वर में गाने लगी। उसका वह दुख से भरा हुआ गान सुनकर नरेन्द्र निद्रित अवस्था में भी अपने आँसुओं को न रोक सका। उसकी मुँदी हुई आँखों से आँसुओं की धारा बह चली। उस युवती ने मानो फिर एक दूसरा गीत शुरू किया। नरेन्द्र को वह स्वर अब कुछ कुछ परिचित सा जँचने लगा। थोड़ी देर में उसको निश्चय हो गया कि वह स्वर उसी अभागिनी ज़ुलेख़ा के कण्ठ का है। नरेन्द्र! अच्छी तरह ग़ौर करके देखो, स्वयं ज़ुलेख़ा क़ब्र के ऊपर बैठ कर दुःख का गीत गा रही है।

नरेन्द्र का स्वप्न समाप्त हुआ। एकाएक उसकी आँखें खुल गईं। उसने चारों ओर ध्यान से देखा, पर कहीं कोई देख न पड़ा। सूर्यास्त हो चुका था। लाल रंग की साड़ी पहने सन्ध्या शोभायमान हो रही थी। उसके ललाट पर एक उज्ज्वल तारा, हीरे की तरह, अपनी अपूर्व चमक दमक दिखा रहा था। सायं-काल की ठंडी हवा मन्द मन्द बह रही थी। यमुना का नील जल और भी अधिकतर नीलवर्ण धारण करके प्रवाहित हो रहा था।

नरेन्द्र आश्चर्य के समुद्र में ग़ोते खाने लगा। वह इसके पूर्व भी तीन चार बार स्वप्न में ज़ुलेख़ा का गाना सुन चुका था। तो क्या ज़ुलेख़ा के ऊपर नरेन्द्र को अनुराग हो गया था?

नरेन्द्र ने भली भाँति अपने हृदय का अनुसन्धान किया। वह हेमलता के अनुराग से परिपूर्ण था। हो सकता है, .ज़ुलेख़ा का ही अनुराग नरेन्द्र के ऊपर हो। .ज़ुलेख़ा मानवी है या परी? यदि परी है तो वह मनुष्य के प्रेम की अभिलाषिणी क्यों है? नरेन्द्र इन बातों को मन ही मन सोचता हुआ क़ब्र की ओर चला। कुछ आगे आकर उसने जो कुछ देखा उससे उसके आश्चर्य की सीमा न रही। एकाएक क़ब्र के पास न मालूम किधर से .ज़ुलेख़ा आ खड़ी हुई। उसका खिन्न शरीर और मलिन चेहरा देखने से यही मालूम होता था जैसे सचमुच ही क़ब्र से मुर्दे की ठटरी फिर जीकर बाहर निकल आई हो। बदन बिलकुल पीला पड़ गया है सही, किन्तु उसकी आँखों से पूर्ववत् तीव्र ज्योति निकल रही है। वह तेजोमय वामा दाँतों से होंठ काटती हुई तिरछी नज़र से नरेन्द्र की ओर देख रही है। उसकी छाती पर एक तेज़ कटार की नोक दिखाई दे रही है। क्या यही अबला दुःख का गाना गाती थी?

.ज़ुलेख़ा नरेन्द्र को आने का इशारा करके आप आगे आगे चली। वह बहुत दूर चल कर, क़िले के भीतर प्रवेश करके, राज-मन्दिर के एक अँधेरे घर में घुसी। नरेन्द्र इतनी दूर तक किंकर्तव्य-विमूढ़ बना उसके पीछे पीछे जा रहा था। किन्तु अब उसको आगे बढ़ने की हिम्मत न पड़ी। वह अँधेरे घर के भीतर एक रमणी के साथ जाने में संकोच करके बोला—मैं नहीं जानता कि तुम कौन हो। मैं बिना किसी की आज्ञा के राजभवन के भीतर प्रवेश करना नहीं चाहता।

.ज़ुलेख़ा—यदि राजप्रासाद के भीतर जाने का मेरा अधिकार न रहता तो तुमको मैं अपने साथ क्यों आने को कहती?

नरेन्द्र—तुमको भले ही भीतर जाने का अधिकार हो,

इससे मुझे क्या ? मैं तुमको नहीं जानता, मैं अपरिचित स्थान में तुम्हारे साथ इस प्रकार छिप कर न जाऊँगा।

.ज़ुलेखा स्वर को कुछ कड़ा कर के बोली—तुम मृत्यु की आशङ्का तो नहीं कर रहे हो ? मैं तातार देश की रहने वाली हूँ। यदि मेरी इच्छा तुमको मार डालने ही की रहती तो मैं अभी तक इस कटार का प्रयोग तुम्हारे ऊपर कभी की कर देती, किन्तु नहीं, मैं ऐसा काम हर्गिज़ नहीं कर सकती। यह लो, कटार को अभी दूर फेंक देती हूँ। निरस्त्र स्त्री के साथ जाने में कदाचित् वीर पुरुष को कोई आपत्ति न होगी।

.ज़ुलेखा की विकट हास्यध्वनि सुनकर नरेन्द्र का मुखमण्डल मारे क्रोध के लाल हो गया। वह चुपचाप .ज़ुलेखा के पीछे पीछे जाने लगा। कुछ और आगे जाकर एक जगह जो ढेर सा कपड़ा रक्खा था वह .ज़ुलेखा ने दिखलाया और नरेन्द्र से पहरने को कहा। नरेन्द्र ने उन कपड़ों को हाथ से उठा कर देखा। वे तातार-देशीय स्त्रियों के पहनाव के थे। उसने .ज़ुलेखा के ऊपर आश्चर्यभरी दृष्टि डाली। .ज़ुलेखा ने इस बार गम्भीरता-पूर्वक कहा—देर मत करो, हम लोग जिस दर्वाज़े से आये हैं वह अब बन्द हो गया। चारों ओर ख्वोजा लोग हाथों में नङ्गी तलवार लिये पहरा दे रहे हैं। ये महल बेगमों के हैं। इनमें बादशाह के अतिरिक्त अन्य पुरुषों के आने की सख़्त मनाई है। यदि कोई तुम्हें पहचान लेगा कि तुम मर्द हो तो उसी घड़ी तुम्हारी जान ले ली जायगी।

नरेन्द्र ने आश्चर्यभरी दृष्टि से चारों ओर देखा। .ज़ुलेखा की बात उसे सत्य जान पड़ी। उसने मजबूर होकर चोली और घाँघरा पहन लिया। .ज़ुलेखा ने हँसते हँसते उसके सिर पर बनावटी बाल सँवार कर चोटी गूँथ दी। नरेन्द्र इस विचित्र वेष से .ज़ुलेखा के साथ साथ अन्तःपुर में गया।

नरेन्द्र .ज़ुलेखा के पीछे पीछे चला। उसने कितने घरों,

दर्वाज़ों और मार्ग को अतिक्रम किया इसकी गिनती नहीं हो सकती। प्रत्येक द्वार पर हाथ में तलवार लिये स्त्री-सेना पहरा दे रही थी, और सैकड़ों दासियाँ इधर-उधर जा आ रही थीं। जुलेख़ा को देखकर पहरेवालों ने रास्ता छोड़ दिया।

नरेन्द्रनाथ बेगमों के महल में ज्यों ज्यों भीतर जाने लगा, त्यों त्यों वह अधिक विस्मित होने लगा। वह उत्तरोत्तर सजावट की चीज़ें, शिल्पकारी और भोग-विलास की सामग्रियों को देखकर चकित हुआ। संगमर्मर के बने हुए भाँति भाँति के रमणीय भवनों की शोभा नरेन्द्र के चित्त को चुराने लगी। शाही इमारत देखकर वह दंग हो रहा। संगमर्मर की दीवार, छत और खम्भों में हरे, नीले, पीले और लाल रङ्ग के बेशक़ीमती पत्थरों के टुकड़े जड़ कर ऐसे ऐसे सुन्दर बेल-बूटे, पेड़-पौधे, और फल-फूल आदि बनाये गये हैं जो असली चीज़ों को मात कर रहे हैं। कहीं सोने के पत्तर से मढ़े हुए खम्भों पर भाँति भाँति के नगीने जड़े हैं और उस पर ऐसी बारीक़ कारीगरी का काम किया हुआ है जो देखते ही बन आवे, वर्णन कर कोई कहां तक पार पावे। भाँति भाँति के बहुमूल्य पत्थरों के बने हुए झिंझरीदार झरोखे, सुन्दर फ़व्वारे और पुष्पोद्यान की शोभा चित्त को अपनी ओर खींच रही है। बेगमों की बैठक और शयनागार की सजावट का वर्णन नहीं हो सकता। सजावट की चीज़ों में आप जिस वस्तु को सर्वोत्कृष्ट मानें वही वहाँ मौजूद समझिए। भाँति भाँति के रङ्गीन काँच की हाँडी, ग्लास और झाड़ों से तरह तरह की रोशनी निकल कर भीतर और बाहर फैल रही है। दीवार से सटे हुए बड़े बड़े आइने खड़े हैं। कहीं टेबुल, कुरसी और गुलदस्ते बड़ी ख़ूबी के साथ सजे हैं। कहीं ग़लीचे पर मख़मली गद्दी बिछी है और उस पर तकिये धरे हैं। द्वार पर फूलों की मालायें टँगी हैं। नीचे मोमी शमादान में कपूर की बत्ती जल रही है। भीतर-बाहर सर्वत्र सुगन्ध

से आमोदित हो रहा है। इन्द्र की अप्सराओं को भी रूप में लजानेवाली बेगमें कोई घर के भीतर और कोई बरामदे में टहल रही हैं। कोई फूलों से अपनी चोटी को सँवार रही है और कोई अपनी सखी-सहेलियों के साथ बैठकर बड़ी ख़ुशी से गा रही है। आज आनन्द का दिन है, इसी से राज-मन्दिर में भाँति भाँति के उत्सव हो रहे हैं। सारा राजप्रासाद आज आनन्द से परिपूर्ण हो रहा है।

ये सब कौतुक देखता हुआ नरेन्द्र वहाँ जा पहुँचा जहाँ स्वयं बादशाह औरंगज़ेब था। नरेन्द्र ने देखा कि बेगमों के साथ बादशाह चौसर खेल रहा है। चौसर के घर सफ़ेद पत्थर की चौकोर तख्ती पर बहुत ख़ूबसूरती के साथ बने हैं। गोटों के स्थानापन्न अत्यन्त सुन्दरी नवयौवना कामिनी हैं। गोटें जुदे जुदे रङ्ग की होती हैं, इसलिए नाज़नियों ने भी जुदे जुदे रङ्ग की पोशाकें पहन रक्खी हैं।

बादशाह का विनोद देखकर नरेन्द्र ज़ुलेख़ा के साथ वहाँ से एक अत्यन्त सुसज्जित कमरे में गया। उस कमरे के भीतर तीन चार बेगमें बैठी हुई गा-बजा रही थीं। उन सबों के गाने-बजाने की मधुर ध्वनि ऊँची अटारियों को पार करके यमुना-किनारे और आकाशमण्डल में प्रतिध्वनित हो रही है।

उस कमरे से कुछ अन्तर पर यमुना नदी की ओर संगमर्मर के बरामदे में चन्द्रमा की मनोहर सुधासिक्त किरणें आ रही हैं। यह स्थान बिलकुल सूना और शान्तभाव से भरा है। ऊपर नीले आकाश में दो एक तारे दिखाई दे रहे हैं और सुधाकर अपने सुधा-सिञ्चित प्रकाश से आकाश को शोभायमान तथा संसार को परितृप्त कर रहा है। नीचे नीलवर्णा कालिन्दी कलकल शब्द करती हुई निरन्तर बह रही है। दो-एक क़िश्तियाँ उसके प्रवाह में किसी ओर चली जा रही हैं। चाँदनी रात में डोंगियों को जाते देखकर स्वभावतः दर्शकों के जी उमँग उठते हैं। इस

चन्द्रमा के प्रकाश में ताजमहल की शोभा न्यारी ही लोगों के हृदय को लुभा रही है।

बरामदे में एक शाही परिचारिका के सिवा और कोई नहीं था। वह हाथ में सितार लिये बजा रही थी, किन्तु इस समय थककर बरामदे में सफ़ेद पत्थर पर लेटी हुई सुख या दुःख का स्वप्न देख रही है। यमुना की ठंढी हवा उस रमणी के केशपाश के साथ चाँदनी रात में खेल रही है और कभी कभी सितार के तारपर दबाव डालकर सुख का गीत गा रही है। बरामदे में खड़े होकर नरेन्द्र ने यमुना की कलकल ध्वनि सुनी। शीतल वायु का सेवन कर वह मुग्ध हो गया। उसके हृदय में न मालूम कैसे कैसे नूतन भाव उदित होने लगे। ऐसी ही निःशब्द रात में, ऐसी ही प्रखर तरङ्गिणी नदी के किनारे, नरेन्द्र ने वङ्गदेश को छोड़ते समय आखिरी बार हेमलता का वह चन्द्र-निन्दक मुख देखा था। इस बात का उसे स्मरण हो आया। कुछ देर तक उसका हृदय हेमलता की भावना में मग्न रहा। फिर वह आकाश की ओर बार बार देखने लगा और एक दीर्घ-निःश्वास त्याग कर वहाँ से दूसरी ओर गया।

वह जिस ओर जा रहा था उधर से लोगों की परस्पर बात-चीत का मधुर शब्द उसके कानों में प्रविष्ट होने लगा। अन्दर महल में इस तरह का कलरव सुनकर नरेन्द्र कुछ विस्मित हुआ और बड़ी उत्सुकता के साथ जल्दी जल्दी उस ओर जाने लगा। वह ज्यों ज्यों आगे बढ़ा त्यों त्यों उसको स्त्रियों के कण्ठ-निःसृत कोमल मधुर शब्द और हास्य स्पष्ट रूप से सुनाई देने लगा। वह और भी अधिक विस्मित होकर आगे बढ़ा, आखिर वहाँ जा पहुँचा जहाँ लोगों की भीड़ लगी थी। वहाँ पहुँचकर उसने देखा कि सामने बहुत बड़ा आँगन है। उसमें भाँति भाँति के फूलों के पेड़ और लतायें लगी हैं। उस आँगन के चारों ओर हर्म्यश्रेणी से फूलों की मालायें लटक रही हैं। आँगन में कहीं

कहीं खिले हुए पुष्प-द्रुम और लताओं की शोभा अपूर्व ही दीख पड़ती है। कहीं केले के थंभ पंक्तिबद्ध गड़े हैं, जिनमें फूलों की माला और आम, अशोक के नवपल्लव इस प्रकार बाँधे गये हैं जो देखते ही बनते हैं। कहीं फव्वारों से चारों ओर जो बूँदें बरस रही हैं वे ऐसी मालूम होती हैं जैसे मोती बरस रहे हों। लताभवन में, पेड़ों के आस पास, आगे, पीछे, दोनों पार्श्व में ऊपर और नीचे सर्वत्र रङ्ग-बिरङ्ग की दीपावली जल रही है, जिसमें भाँति भाँति की रोशनी हो रही है मानो आज बेगमों का अन्तःपुर अपूर्व रूप धारण कर इन्द्र की अमरावती को भी लज्जित कर रहा है। उस आँगन में एक दूकान लगी है। उसी पर भीड़ है। झुण्ड के झुण्ड ख़रीदार स्त्रियाँ इधर से उधर घूम रही हैं।

दूसरे बाज़ार से इसमें भेद इतना ही है कि यहाँ ख़रीद-फ़रोख़्त करनेवाली स्त्रियां ही स्त्रियाँ हैं। इस बाज़ार में मर्द की छाया तक भी कहीं देखने में नहीं आती। भारतवर्ष के प्रधान प्रधान सेठ-महाजनों की स्त्रियाँ सौदा बेचनेवाली थीं और ख़रीद करनेवाली थीं बादशाह की बेगमें। जो कोमलाङ्गिनी लावण्य-मयी युवतियाँ ख़रीद-फ़रोख़्त कर रही थीं उनका हाव-भाव, मृदु परिहास और वाक्-चातुरी देख कर नरेन्द्र चकित होगया।

पाठकों को विदित है कि दिल्ली के बादशाह हर साल नौरोज़ के दिन बेगमों के महल में एक बाज़ार लगाते थे जिसमें भारत-वर्ष की प्रधान प्रधान रूपवती महिलायें बहुमूल्य पदार्थ बेचने आती थीं। अमीर और राजा लोग अपने अपने परिवार की स्त्रियों को उस बाज़ार में इसलिए भेजते थे कि उनकी रमणियों के साथ बेगमों से जान-पहचान हो जाय। पुरुषों में सिर्फ़ बादशाह आते थे। पूर्व प्रथा के अनुसार इस आनन्द के दिन औरंगज़ेब ने भी वैसा ही बाज़ार लगाया था। दो एक प्रधान बेगमों को साथ लेकर आज वह ख़ुद एक दूकान से दूसरी

दूकान की देख भाल कर रहा था। भाइयों के साथ लड़ाई छिड़ जाने पर रौशनआरा ने अपने प्रियतम भाई औरंगज़ेब की बहुत कुछ सहायता की थी, इसलिए आज इस बाज़ार में रौशनआरा की शान-शौक़त का मुक़ाबला कौन कर सकता था ? उसका दबदबा और ठाट-बाट आज सबसे बढ़ा चढ़ा था। औरंगज़ेब की दूसरी बहन जहानआरा ने दारा का पक्ष लिया था अतएव आज के महोत्सव में वह नहीं था।

नरेन्द्रनाथ विस्मयोत्फुल्ल नेत्रों से इस अद्भुत रूप बाज़ार को देखने लगा। उसने देखा कि बादशाह एक रूपवती मुग़ल-बालिका से कितने ही रत्नजटित स्वर्णभूषण और साटन आदि बहुमूल्य कपड़ों का मोल तोल कर रहा है। दर दाम करने में दोनों एक से एक चतुर हैं। मोल में एक पैसे की घटी-बेशी पर दोनों के बीच परिहास-मिश्रित वह मीठा वाद-विवाद हो रहा है जो शायद ही नरेन्द्र के कहीं सुनने में आया हो।

औरंगज़ेब ने कहा—तुम्हारी चीज़ अच्छी नहीं। तुम यहाँ लोगों को ठगने आई हो ?

चतुर मुग़ल-कन्या ने उत्तर दिया—"तुम कैसे ख़रीदार हो ? ऐसा माल तुमने कभी देखा ही नहीं। इसकी दर क्या जानोगे ? तुम इस अनूठी चीज़ को लेकर क्या करोगे ? दूसरी दूकान देखो, तुम्हारे लायक़ चीज़ कहीं मिल जायगी।" इस प्रकार दोनों में बड़ी देर तक वाद-विवाद होने के अनन्तर मूल्य निर्धारित हुआ। ख़रीदार बयाने के तौर पर मानो दो चार रुपयों की जगह भूल से दो चार सोने के सिक्के उस दिलदार सौदागरनी को देकर चला गया।

नरेन्द्र इस प्रकार बहुत देर तक बाज़ार का क्रय-विक्रय देखता रहा, फिर उसने ज़ुलेख़ा की आज्ञा के अनुसार सीसमहल में प्रवेश किया। सीसमहल की सजावट और शोभा उसने और भी विलक्षण देखी। ख़ास कर यह महल बादशाह और बेगमों

के स्नान के लिए बना है। संगमर्मर का एक बहुत सुन्दर हौज़ बना है। उसके नीचे दो एक छिद्र हैं जिनसे निरन्तर पानी बह रहा है। हौज़ के नीचे पत्थर पर मछलियों के चित्र ऐसी ख़ूबी से बने हुए हैं जिससे हौज़ के स्वच्छ जल में झाँकने से जान पड़ता है मानो पानी के नीचे भाँति-भाँति की मछलियाँ खेल रही हों। फ़व्वारे का निर्मल जल बड़े वेग से ऊपर की ओर उठ रहा है और मुक्काराशि की तरह चारों ओर पत्थर के सहन पर गिर रहा है। छत से लटकती हुई रंग-बिरंगी हाँड़ी, कन्दील और झाड़ की जगमगाहट से स्नानागार की शोभा सौगुनी बढ़ रही है। विविध वर्ण के काँच से विनिर्गत प्रकाश फ़व्वारे के जलकणों पर प्रतिहत होकर एक अपूर्व ही शोभा प्रकट कर रहा है। नीचे से ऊपर तक चारों ओर रत्नजटित सुचारु दर्पणों में संगमर्मर की दीवार ढकी सी है। यह इसलिए कि जिसमें स्नान करने के समय युवतियाँ चारों ओर से अपने खुले बदन को निहार सकें। विलासपरायण सम्राट्-गण अपनी प्रणयिनी बेगमों के साथ इसी घर में स्नान और जल-क्रीड़ा किया करते थे। इसलिए कितने ही देशों से भाँति भाँति की विलासवर्द्धक वस्तुएँ लाकर यह विलासभवन सजाया गया है।

आज अनेक देशों से अनेक यवनी और हिन्दू रमणियाँ इस राजमन्दिर में एकत्र हुई थीं। उनमें कितनी ही रसीली स्त्रियाँ बड़े ग़ौर से सीसमहल की अपूर्व शोभा देख रही थीं। ज़ुलेखा उन सबके बीच से नरेन्द्र का हाथ पकड़ कर एक तरफ़ ले गई और एक दर्पण के सामने लाकर उसे खड़ा कर दिया। ज़ुलेखा ने उँगली के इशारे से उस दर्पण में एक प्रतिबिम्ब दिखला दिया। नरेन्द्र चकित होकर निर्निमेष दृष्टि से उस प्रतिबिम्ब को देखने लगा। उस प्रतिबिम्ब को देखने से उसके आश्चर्य की सीमा न रही। वह आइने में किसका प्रतिबिम्ब देख रहा है? क्या वह स्वप्न देख रहा है या उन्माद-ग्रस्त होगया

है ? नरेन्द्र का सारा शरीर काँप रहा है। कलेजा बड़े वेग से धड़क रहा है। आँखों में टकटकी बँध गई है। कुछ देर में वह प्रतिबिम्ब धीरे धीरे आइने से हट गया। जिसका वह प्रतिबिम्ब था वह रमणी घूँघट डाले सीसमहल से बाहर निकली। प्रेमोन्मत्त नरेन्द्र उसके पीछे पीछे चला।

वह रमणी क्षत्रियाणी के वेष में थी। उसको अच्छी तरह देखने के लिए नरेन्द्र धीरे धीरे उसके पास आया। पास आने पर भी उसकी खुली भुजाओं के सिवा और कोई अङ्ग न देख सका। नरेन्द्र ने उस रमणी का चेहरा देखने के लिए बहुत कोशिश की, पर देखने न पाया, क्योंकि उसने एक बार भी अपने मुँह पर से घूँघट को न हटाया।

नरेन्द्र भी स्त्री के वेष में था। एक बार उसके जी में आया कि उस रमणी से उसका नाम-ग्राम पूछे; किन्तु उसका पहले ही कण्ठरोध होगया था। बहुत प्रयत्न करने पर भी उसके मुँह से बोल ही न निकला। एक बार उसने चाहा कि उस रमणी का हाथ अपने हाथों में लेकर हृदय को शीतल करे, पर उसका हाथ न उठा, प्रत्युत ज़ोर से छाती धड़कने लगी। नरेन्द्र के देखते ही देखते वह रमणी अपनी सखी-सहेलियों को साथ ले बाज़ार से रवाना हुई। नरेन्द्र भी उसके पीछे पीछे चला, अनेक कोठरियाँ, अनेक द्वार, अनेक पुष्पोद्यान, और अनेक महलों को अतिक्रम करके बाहर आया। वहाँ अनेक शिविकायें (डोलियाँ) रक्खी थीं। राजपूत रमणियाँ अपनी अपनी डोली पर सवार हुईं। जिस रमणी की ओर नरेन्द्र की दृष्टि गड़ी थी वह भी शिविका पर आरूढ़ होने का उपक्रम करने लगी। उसकी चेष्टा से जान पड़ा जैसे उसने यमुना नदी और आगरे की शाही इमारत इसके पूर्व कभी न देखी हो। क्योंकि डोली पर चढ़ने के पहले उसने एक बार राजमन्दिर और यमुना के प्रवाह की ओर सतृष्ण नयनों से देखा। यमुना की हवा से उस रमणी का

घूँघट हिलने लगा। नरेन्द्र तीव्र दृष्टि से उसके अवगुण्ठनावृत मुख की ओर देखने लगा। नरेन्द्र के हृदय की आतुरता बढ़ने लगी किन्तु हवा के झोंके से उसका घूँघट मुँह पर से न हटा। नरेन्द्र को मुख देखने की लालसा बनी ही रही। उसके मानसिक भाव पर कुछ लक्ष्य न देकर वह राजपूत-वेष-धारिणी रमणी शीघ्र डोली पर सवार हो चली गई।

क्या वह हेमलता थी? उसकी चाल-ढाल से तो ऐसा ही जान पड़ता था। उसके शरीर का गठन, उसकी बाँहें और दर्पण में उसके मुखमण्डल का मनोहर प्रतिबिम्ब हेमलता ही का सा देख पड़ा था। किन्तु वह बेगमों के महल में आगरा क्यों आवेगी? और क्षत्रियाणी का सा वेष-विन्यास ही क्यों धारण करगी। नरेन्द्र! सावधान हो, प्रेमान्ध होकर किसको हेमलता समझ रहे हो? किसके लिए तुम देश-देशान्तर की धूल छान रहे हो?

— —

अट्ठाइसवाँ परिच्छेद

भ्रातृस्नेह

हीपुरनगर के जमींदार की उच्च अट्टालिका के पास सुन्दर और विस्तृत उपवन था। उसी उपवन से होकर गङ्गा के किनारे जाने-आने का रास्ता था। उसी उपवन में नरेन्द्र और हेमलता दोनों साथ मिलकर दौड़धूप करते और खेलते थे। कभी उस नदी के किनारे खेलने जाते थे, कभी हँसते, कभी रोते और कभी गाते थे। अब वह जमाना गुजर गया। वह सुख का दिन अब स्वप्न सा हो गया। नरेन्द्र अशान्तचित्त होकर देश-देश घूम रहे हैं। रमेशचन्द्र श्वशुर की मृत्यु होते ही जमींदार बन बैठा है। हेमलता अब बालिका नहीं है। वह नये जमींदार की अर्द्धाङ्गिनी बन कर गृहिणी पद को चरितार्थ कर रही है।

सन्ध्या-समय उस उपवन के रास्ते से दो स्त्रियाँ गङ्गा-किनारे जा रही हैं। उनमें एक तो हेमलता है और दूसरी है रमेशचन्द्र की विधवा बहन शैवलिनी। हेमलला की उम्र इस समय पन्द्रह वर्ष की होगी, उसका गौर शरीर कोमल है और लावण्य से भरा है। उसके सभी अङ्ग सुडौल हैं। कोई अंग ऐसा नहीं जो उसके मनोहर रूप के अनुरूप न हो। यह सब कुछ होने पर भो यौवनारम्भ की प्रसन्नता उसके अंग में लक्षित नहीं होती। जवानी का अपूर्व विकास उसके चेहरे पर दिखाई नहीं देता। उसका चेहरा कुम्हलाये हुए कमल के फूल सा दिखाई देता है। होंठ सूखे हुए से दीख पड़ते हैं। स्थिर दृष्टि में

चिन्ता की झलक दीख पड़ती है। असमय में ही उसका चित्त चिन्ता से क्यों जर्जर हो रहा है? यदि उसके हृदय में कोई चिन्ता न होती, यदि उसका हृदय उमंग से भरा रहता तो क्या वह इसी तरह नम्रतापूर्वक मन्द-मन्द चलती? तो क्या वह छोटे से अधखिले फूल को तोड़कर इस तरह स्थिरभाव से उसकी ओर निहारती? जिस खुले, काले, कुञ्चित, सुचिक्कण केश-पाश से उसका मुखमण्डल और दोनों नेत्र कुछ ढँके से हैं उसे ज़रा हटाकर देखो। उसके नेत्र हैं तो जलशून्य, पर दृष्टि स्थिर है और शारीरिक चेष्टा यौवनोचित चपलता से रहित है। हेमलता यद्यपि लम्बी साँस नहीं लेती तथापि उसके चिन्ता-भाराक्रान्त हृदय से धीरे धीरे उष्णश्वास बहिर्गत हो रहा है। अधखिले यौवनपुष्प के भीतर दुःख-कीट का प्रवेश नहीं हुआ है तथापि वह जीवन के अभाव से कुछ सूखा हुआ और फीका सा दीख पड़ता है। यौवन के अरुणोदय ने चिन्तारूपी मेघ की छाया में पड़ कर अपूर्व रूप धारण किया है।

शैवलिनी की अवस्था पच्चीस वर्ष की होगी। वह विधवा है। उसके शरीर से जवानी की शोभा उतर चुकी है, पर पवित्रता का भाव अङ्ग अङ्ग से झलक रहा है। उसके प्रशस्त ललाट और विशाल नेत्रों में शान्ति का भाव भरा है। शैवलिनी के अङ्ग पर कोई भूषण नहीं है तो भी वह श्रीहीन नहीं है। अब भी उसके शरीर में लावण्य बना है। वह सफ़ेद पकड़ा पहने अपने हृदय की स्वच्छता के साथ ही बाहर की स्वच्छता प्रकट कर रही है। यह अपनी सच्चरित्रता-द्वारा विधवाओं के लिए एक आदर्श रमणी है। वह हेमलता को अपनी छोटी बहन की तरह प्यार करती है। वह मीठी मीठी बातें करती हुई हेमलता के साथ गङ्गातट जा रही है। शैवलिनी का जीवन मेघशून्य आकाश की भाँति चिन्तारहित है।

हेमलता बाल्यकाल में नरेन्द्र का मुँह देख कर बहुत प्रसन्न

होती थी और उसके साथ मिलकर खेलने में विशेष सुख मानती थी। बाल्यकाल बीत चुकने पर, अर्थात् यौवनारम्भ में, नरेन्द्र ने हेमलता के हृदय में स्थान पाया था, पर हेमलता यह न समझ सकती थी कि उसका हृदय नरेन्द्रनाथ की प्रतिमूर्त्ति से क्यों अङ्कित हो रहा है। उसके हृदय में नरेन्द्र का ध्यान क्यों हमेशा बना रहता है? जब नरेन्द्र से उसका चिर-विच्छेद हुआ, जब वह एक अन्य पुरुष की सहधर्मिणी होकर नरेन्द्र की प्रतिमूर्त्ति को अपने हृदय से अलग कर देने के लिए बाध्य हुई तब उसकी समझ में आया कि प्रेम क्या पदार्थ है, तब उसके हृदय को मर्मभेदी यातना विदीर्ण करने लगी। वह अभी नवविवाहिता बालिका थी। किससे अपना दुःख कहती, किससे अपने हृदय की बात कहकर दुःख का बोझ हलका करती?

शैवलिनी जब पाँच वर्ष की थी तभी विधवा हो गई थी। वह बराबर ससुराल में रहती थी, कभी कभी अपने भाई को देखने के लिए वीरनगर आ जाती थी। शैवलिनी बड़ी बुद्धिमती थी। दो तीन बार वीरनगर में आते ही उसने हेमलता के अन्तःकरण का भाव कुछ कुछ जान लिया। वह यह सोचकर, कि यदि मैं इस बालिका को यत्न से न रक्खूँगी तो मेरे भाई का बना-बनाया घर उजड़ जायगा, बराबर वीरनगर में रहने लगी।

शैवलिनी के सस्नेह व्यवहार और सान्त्वना-वाक्य से हेमलता के हृदय का दुःख किञ्चित् घट गया। शैवलिनी मनुष्य के स्वभाव को भली भाँति परखती थी और विशेष रूप से यह जानती थी कि किसके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए। वह हेम का कभी तिरस्कार नहीं करती थी, बल्कि उसे अपनी छोटी बहन के बराबर मानकर हमेशा उसका जी बहलाया करती और उसे धैर्य देती थी। शैवलिनी की हृदयग्राहिणी, सरस और प्रीति-सनी बातें सुनकर कौन ऐसी दुःखिनी होगी जो अपने

दुःख को न भूलेगी ? शैवलिनी कहानियाँ सुनाने में बड़ी प्रवीण थी। वह हेमलता को एक न एक पुराण की पवित्र कथा सुनाती ही रहती थी। हेमलता बड़े चाव से पौराणिक कथा सुना करती थी। कहानियाँ सुनते सुनते वह रात में सोना भी भूल जाती थी। जब वह शैवलिनी के मुँह से नल-दमयन्ती, सावित्री-सत्यवान और श्रीसीता-राम का उपाख्यान सुनती तब उसे यह अच्छी तरह जान पड़ता कि स्त्रियों को अपने पति की सेवा किस तरह करनी चाहिए। "घोर अन्धकारमय वन है, गहरी रात में चारों ओर वृक्षों की मर्मराहट के सिवा और कुछ सुन नहीं पड़ता। बीच बीच में हिंसक जन्तुओं का चीत्कार सुनाई देता है। राजकुमारी दमयन्ती आज पति के प्रेम का एक-मात्र अवलम्बन करके राज्यसुख को तिलाञ्जलि दे, भिखारिन बन, पति के साथ वन वन भटक रही है। प्यास लगने पर उन्हें पीने को पानी देती है, विवस्त्र होने पर उन्हें अपने पहनने का कपड़ा देती है और जब चलते चलते उसके पतिदेव थक जाते हैं तब वह उनका मस्तक अपनी गोद में रखकर उनके मुख पर अञ्चल से हवा करती है। उनके सो जाने पर भी आप जागती रहती है। वही स्वामी जब माया-मोह से रहित होकर अभागिनी (दमयन्ती) को अकेली छोड़कर चले गये तब भी अभागिनी को पति-चिन्ता के अतिरिक्त इस संसार में दूसरी चिन्ता न थी। स्वामी के पुनर्मिलन के सिवा दूसरी आशा उसके हृदय में न थी।

अथवा एक बार उस विदेहनन्दिनी की ओर देखो। महर्षि वाल्मीकि के पवित्र आश्रम में चिरदुःखिनी सीता गाल पर हाथ रक्खे अब भी हृदयेश्वर महाराज रामचन्द्र की चिन्ता कर रही है। सामने दोनों बालक खेल रहे हैं। वह उन दोनों के मुँह की ओर स्थिर दृष्टि से देख रही है, पर मन लगा है श्रीरामचन्द्र के चरणों की ओर। जिन्होंने निराश्रया, निष्कलङ्का, निर-

पराधिनी, अन्तःसत्त्वा, मिथिलेशनन्दिनी महारानी सीता को सर्वदा के लिए निर्वासित किया है उन निष्ठुर स्वामी की चिन्ता अब भी सीता के हृदय में पूर्ववत बनी है और उनके चरण-कमलों का ध्यान कर अब भी वह अपने जीवन को धन्य मानती है। वही निर्मोही पति सीता के जीवन के जीवन हैं, हृदय के सर्वस्व हैं! अहा! पतिव्रताओं का कैसा माहात्म्य है!

रात के तीसरे पहर तक हेमलता अपनी धर्मपरायणा ननँद से ये सब पवित्र कथायें सुनती रहती थी। जब वह किसी पवित्र पतिपरायणा राजकुमारी की विपद्वार्ता सुनती तब उसका हृदय खण्ड खण्ड होने लगता था; ननँद की गोद में सिर रखकर वह अश्रु-वर्षण के साथ सिसक सिसक कर भर पेट रोती और फिर धैर्य धारण कर कथा सुनती थी। इन प्राचीन उपाख्यानों को सुनकर हेमलता मन ही मन सोचती थी, "इस संसार में कोई सुखी नहीं है, सभी दुःख भोग चुके हैं। जब श्रीसीताजी दुःसह दुःख पा चुकी हैं, सावित्री दुःख भोग चुकी हैं, दमयन्ती पतिवियोग से असख्य यन्त्रणा पा चुकी हैं तब उन सबके आगे मुझ अभागिनी की क्या गणना? मैं तो अपने दुःख से दुःखिनी हो रही हूँ। वे सब जगद्वन्द्य स्त्रियाँ पतिव्रता थीं। मैं अभागिनी अब भी नरेन्द्र का सोच कर रही हूँ। अपने देव-तुल्य पति को भूलकर अन्य पुरुष की चिन्ता में चिन्तित रहा करती हूँ। धिक्कार है मेरी इस मलिन बुद्धि पर! मैं अबला हूँ, मुझमें बल नहीं है, हे ईश्वर! तुम सहाय हो, मेरे हृदय से पाप की चिन्ता को दूर करो। जहाँ तक मुझसे हो सकेगा, मैं अपने अन्तःकरण को पवित्र रखने की चेष्टा करूँगी।"

हेमलता ने शैवलिनी की विलक्षण प्रीति और धैर्यप्रदान से क्रमशः शान्ति प्राप्त की। उसके हृदय से प्रथम प्रेम-स्वरूप भीषण तीर उत्पाटित हुआ। बड़े प्रयत्न और परिश्रम से शैवलिनी का उद्योग सफल हुआ। हेमलता के हृदय में अब नरेन्द्र

की वह भावना न रही। किन्तु उसको भूलने में हेमलता ने जो अनेक ताप सहे उससे उसके यौवन की प्रफुल्लता कुछ कुम्हला ज़रूर गई। चिन्ता न रहने पर भी उसके चेहरे का रङ्ग बदल गया। हेमलता अब दुःखिनी नहीं रही, पर स्वभावतः वह शान्त, नम्र और संकुचित अवश्य हो गया। अब हेमलता और शैवलिनी रोज़ रोज़ नरेन्द्र की चर्चा किया करतीं। शैवलिनी बाल्यकाल से ही नरेन्द्र को भाई कहती थी। अब हेम भी उसे भाई के बराबर समझने लगी। भ्राता के ऊपर कोई सङ्कट आ पड़ने या उसके दूर देश जाने में बहन को चिन्ता होती ही है। हेम भी भ्रातृभाव से नरेन्द्र के लिए चिन्ता करने लगी किन्तु उसका हृदय अब पूर्ववत् विचलित नहीं होता था। जब कभी वह साँझ को उस उपवन में टहलने जाती तब उसे एकाएक नरेन्द्र के बाल्यकाल की बात याद हो आती। भागीरथी का कल-कल शब्द सुनकर, निर्मल आकाश में पूर्णचन्द्र का दर्शन करके और उपवन के हरित वृक्ष की ठण्ढी छाया में बैठकर जब उसे अपने बाल्यकाल के संगी का स्मरण होता था तब उसकी आँखों में आँसू भर आते थे। पाठकगण, आप लोग अब उन आँसुओं को भ्रातृस्नेह का निदर्शनस्वरूप ही समझें। नरेन्द्र के ऊपर जो उसका पहला भाव था उसको उसने बड़े यत्न से हटा दिया। उस भाव को मन से हटाने के लिए उसने बहुत बहुत कष्ट सहे हैं। अनेक यन्त्रणायें सहकर हेम ने उस भाव को हृदय से दूर किया है। यदि हेम के हृदय में उस भाव का एक कण भी छिपा हुआ देख पड़े तो पाठक उसे कदापि क्षमा न करें। हेम के हृदय में नरेन्द्र के पूर्वानुराग का यदि किञ्चित् भी सम्बन्ध पाया जाय तो वह कदापि क्षमा की पात्री नहीं।

उनतीसवाँ परिच्छेद

एक पौराणिक कथा

गङ्गातीर से लौटकर हेमलता और शैवलिनी ने घर का सब काम पूरा किया। फिर दोनों एक कमरे में बैठ कर वार्तालाप करने लगीं। हेम ने कहा—बहन, बहुत दिनों से तुम्हारे मुँह से कथा नहीं सुनी है। आज कुछ अवकाश मिल गया है। कोई पुराण की कथा कहो।

शैवलिनी ने प्रीतिपगी बातों से उत्तर दिया—तुम कौन सी कथा सुना चाहती हो ? जो कहो सो कहूँ।

हेमलता—राजा हरिश्चन्द्र की कथा बहुत दिनों से नहीं सुनी। वही कथा कहो।

शैवलिनी हरिश्चन्द्र की कथा कहने लगी। महाभारत की कथा यथार्थ में अमृत के तुल्य है। उसकी कथा बड़ी ही सुमधुर, बहुत ही ललित और हृदयग्राही है। हा, राजा हरिश्चन्द्र का राज्य गया, धन गया और मान भी गया। स्त्री-पुत्र को लेकर राजा वन वन घूमने लगे। राजपत्नी शैव्या इस समय राजा के लिए एक-मात्र प्राण-वलम्बिनी जीवनसर्वस्व हो रही थी। सुख के समय, सम्पत्ति के दिनों में, रमणी का चित्त बड़ा ही चञ्चल रहता है। वह कितना मान करती है, कितना अभिमान करती है और कितना ही प्रणय-कलह करती है। किन्तु हमारा जीवन-रूपी आकाश जब क्रमशः दुःखरूपी बादल से आच्छन्न होने लगता है, जब सांसारिक समस्त सुख—अभिनय के अन्त में दीपश्रेणी की भाँति—एक एक करके अदृश्य हो जाते हैं, जब

आशारूपिणी मृगतृष्णा अनेक रास्तों से घुमा-फिरा कर अन्त में हमें मरुभूमि में पटक कर अदृश्य हो जाती है, और जब लक्ष्मी हम लोगों से विमुख हो जाती तथा बन्धुगण हम लोगों को विपत्तिसागर में डूबते छोड़ अलग हो जाते हैं तब कौन अनन्य-हृदया होकर प्रसन्न मन से हमारी सेवा करती है ? उस घोर विपत्ति में कौन हमारा साथ नहीं छोड़ती है ? कौन हमारे लिए अपने हाथ से शय्या सँवारती है ? कौन हमारे सूखे कण्ठ में शीतल जल डालकर हृदय का ताप शमन करती है ? माँ-बेटी के अतिरिक्त अनवरत हाज़िर रहकर कौन हम भाग्यहीनों की रुग्णावस्था में सेवा करके भाँति भाँति की सान्त्वना देती है ? ऐसी एक पतिव्रता स्त्री ही है, जो पति-सुख के आगे अपने सुख को तुच्छ समझकर सदा पति की सेवा में तत्पर रहा करती है। सती स्त्री के सिवा दूसरा और कौन है ऐसा जो अपनी भूख, प्यास और नींद को भूलकर भाग्यहीन पति की सेवा में सदा तत्पर रहे ? रमणी का प्रेम अगाध है। उसके अनुराग की सीमा नहीं। हरिश्चन्द्र के ऊपर कैसे कैसे संकट आये; पर शैव्या ने उनका साथ न छोड़ा। वह बड़े अनुराग और हर्ष से उनकी सेवा करने लगी। हरिश्चन्द्र और शैव्या के दुःख की बात सुनकर हेमलता की आँखों में आँसू भर आये।

हाय! दुःख पर दुःख! हरिश्चन्द्र की दुर्दशा का अन्त न रहा। उन्होंने पुत्र-कलत्र को बेच डाला। आप भी चाण्डाल के हाथ बिके। अभागिनी शैव्या, पतिविरह की घोर यन्त्रणा सहकर, दैहिक परिश्रम से अपना और अपने बालक का पालन-पोषण करने लगी। हाय! इस अवस्था में भी घोर सङ्कट, घोर यन्त्रणा! वह एक-मात्र पुत्र भी अकाल में ही कालकवलित होगया। हेमलता से अब न रहा गया। वह ननँद की छाती से लग कर आँसू बरसाने लगी।

कथा समाप्त हुई। राजा हरिश्चन्द्र को सत्यपालन के

प्रभाव से फिर अपनी रानी, राजकुमार और राज्यधन प्राप्त हुआ। उनके सुख का संसार फिर बस गया। हेमलता का हृदय शान्त हुआ। कुछ देर तक दोनों चुप रहीं, हेमलता ने उठकर धीरे धीरे खिड़की खोलकर देखा, बाहर चारों ओर चाँदनी छिटकी हुई है। ठंडी हवा के संयोग से पेड़ झूम रहे हैं और दूर से गङ्गा के प्रवाह का कलकल शब्द सुनाई दे रहा है।

शैवलिनी ने धीरे धीरे हेमलता के पास आकर बड़े प्यार से उसका हाथ पकड़ा। हेम क्या सोच रही थी? वह यही सोच रही थी कि पेड़ों पर जो इतने जुगनू दीख पड़ते हैं वे भी तो जीव हैं। इन्हें भी तो सुख-दुःख, आशा-भरोसा आदि का ज्ञान होगा। जिस ईश्वर ने राजा हरिश्चन्द्र को विपत्ति से छुड़ाया था वही इसी रात में यत्नपूर्वक इन जुगनुओं को खाना देते और इनका मनोरथ पूर्ण करते हैं। वही इस विपुल संसार में सभी प्राणियों की रक्षा करते हैं। हम लोगों को चाहिए कि एकाग्र मन से उनकी पूजा करें। वही हम लोगों की रक्षा करेंगे।

हेमलता ने बालिका-सुलभ स्वभाववश शैवलिनी से पूछा—बहन, जो भगवान दया के समुद्र कहलाते हैं उन्होंने थोड़ी उमर में तुम्हें विधवा क्यों कर दिया

शैवलिनी—सभी के भाग्य में क्या सब सुख बदा रहता है? उन्होंने मुझको विधवा कर दिया पर मुझे दुःखिनी नहीं बनाया। देवता के समान सहोदर भाई दिया है। तुम्हारी ऐसी सुशीला भावज दी है। उन्होंने मेरे लिए वह सोने का संसार बसा दिया है जिसमें मैं दिन-रात फूली रहती हूँ। इससे बढ़कर अब मुझे क्या चाहिए? मेरे मन में और कुछ लालसा नहीं है। मैं इतना ही चाहती हूँ कि एक बार तीर्थभ्रमण करूँ।

हेमलता—हम लोगों के काशी-वृन्दावन जाने की बात स्थिर हुई थी न?

शैवलिनी—हाँ, रमेश ने तीर्थयात्रा के प्रस्ताव पर अपनी सम्मति प्रकट की है। जहाँ तक सम्भव है, अब शीघ्र ही हम लोग तीर्थयात्रा को चलेंगी।

हेमलता—बहन, तुम्हारे साथ तीर्थ जाने की बात सोचकर मेरे मन में बड़ा ही आह्लाद होता है। कितने ही देश देखूँगी, कितने ही तीर्थों का दर्शन करूँगी। सुना है, नरेन्द्र उसी तरफ़ कहीं पछाँह में हैं। उनसे भी कदाचित् भेंट हो जाय।

शैवलिनी—हो सकती है।

इसी समय रमेश ने चौखट के भीतर पैर रक्खा। शैवलिनी एक बगल से होकर धीरे धीरे वहाँ से बाहर चली गई। उसके चेहरे पर कुछ चिन्ता का चिह्न दिखाई दे रहा था।

शैवलिनी को काहे की चिन्ता थी? बाहर खड़ी होकर वह यही सोचने लगी कि हेम, तुम मुझे विधवा जान कर नितान्त दुःखिनी और अभागिनी समझती हो। किन्तु स्त्री जिस कष्ट को कभी सहन नहीं कर सकती उस कष्ट को तुमने सहन किया है। उस तीव्र वेदना के आघात से तुम्हारा हृदय चूर चूर हो चुका है। तुम्हारा जीवन हीनप्रभ हो रहा है। तुम्हारी विकासोन्मुख यौवन-लता मुरझा रही है। इस यौवनोद्गम में, इस थोड़ी सी उम्र में, तुम्हारा दुर्बल शरीर और भी सूख गया। तुम्हारे होंठ देखकर मेरी छाती फटती है। तुम्हारी इस विषम चिन्ता की बात मेरा भाई नहीं जानता। तुम अभी बालिका हो। उस चिन्ता से अपने चित्त को बचाने के लिए बहुत कुछ प्रयत्न कर चुकी हो, और उसमें कुछ सफलता भी प्राप्त की है। किन्तु नरेन्द्र के दर्शन करने से तुम्हारी क्या दशा होगी, यह मैं नहीं जानती। भगवान अनाथों के नाथ हैं, असहायों के सहायक हैं, वही तुम्हारे धर्म की रक्षा करेंगे।

तीसवाँ परिच्छेद

तीर्थयात्रा

शैवलिनी फिर कमरे के भीतर आई और भाई को आसन देकर उसने भोजन परोस दिया। फिर वह उसके पास बैठकर पंखा झलने लगी। हेमलता उस कमरे से बाहर निकल आई, और द्वार के एक पार्श्व में खड़ी होकर स्वामी का भोजन देखने लगी।

दोनों भाई-बहनों में बहुत देर तक बातचीत होती रही। आखिर रमेशचन्द्र भोजन करके उठ बैठा। रात बहुत बीत चुकी थी। इसलिए उसने सोने का उद्योग किया। शैवलिनी दूसरे कमरे में गई।

हेमलता धीरे धीरे स्वामी के पास आई और बड़ी नम्रता से उनके हाथ में पान का बीड़ा दिया। रमेश का हृदय आज कुछ विशेष आह्लादित था। उसने दिल्लगी में कहा—हम पान न खायँगे।

हेम—क्यों ?

रमेशचन्द्र—तुम मुझसे न कुछ बात करती हो और न कुछ पूछती हो। इसका कारण बतलाओ।

हेमलता—आप जो कुछ पूछते हैं उसका उत्तर मैं देती हूँ। दासी को जो कुछ कहना होगा आपसे कहेहीगी। पहले आप पान खा लें, फिर मैं आपसे बातें करूँगी।

रमेशचन्द्र—क्या सदा हमें तुम्हारा ऐसा ही सूखा मुँह

देखना होगा ? तुम्हारे शरीर की चेष्टा कब बदलेगी, तुम्हारे मुख-कमल को विकसित होते हम कब देखेंगे ?

हेमलता—मेरा शरीर तो अब अच्छा है।

रमेशचन्द्र—हाँ, ईश्वर की कृपा से शरीर तो तुम्हारा कुछ अच्छा-सा देख पड़ता है। किन्तु मन तो वैसा ही है। मन का उल्लास देखें तब तो।

हेमलता—मन का उल्लास आप क्या देखेंगे ?

रमेशचन्द्र—मन का उल्लास यही कि, तुम्हारे हृदय में किसी तरह का दुःख न रहे।

हेमलता—क्यों ? मेरे मन में तो कोई कष्ट नहीं है। बहन के मुख से आज मैंने एक दुःख की कहानी सुनी थी। उसी से मेरी आँखों से दो एक बूँद आँसू टपक पड़े थे।

रमेशचन्द्र को इस बात से पूरा सन्तोष न हुआ। उसने फिर कहा—हम तुम्हारा प्रफुल्ल मुँह कब देखेंगे ?

हेम इस प्रश्न का कुछ उत्तर न दे सकी। वह सिर नीचा कर धरती की ओर देखने लगी। एकाएक उसे एक बात का स्मरण हो आया। वह इस दफ़े ज़रा हँस कर बोली—जब आप अपनी प्रतिज्ञा पूरी करेंगे।

रमेशचन्द्र—कैसी प्रतिज्ञा ?

हेमलता—तीर्थयात्रा की।

रमेशचन्द्र अब की बार कुछ लज्जित हुआ। वह शैवलिनी और हेमलता के अनुरोध से कई बार तीर्थ जाने की प्रतिज्ञा कर चुका था। किन्तु अभी तक तीर्थ-यात्रा का उसने कुछ उद्योग न किया था। अभी हेमलता की बात से तनिक मौन साध कर कहा—यदि तीर्थ-भ्रमण करने से तुम्हारा शरीर और मन यथार्थ में चङ्गा हो जाय तो हम तुमको अवश्य तीर्थ ले चलेंगे। हम कल ही तीर्थ-यात्रा का सब प्रबन्ध करेंगे।

यह सुनकर हेम प्रसन्न हुई। उसको कुछ प्रसन्न होते देख

रमेशचन्द्र बहुत ख़ुश हुआ। उसने हेमलता को छाती से लगा कर स्नेह-पूर्वक उसका मुँह चूमा।

उपर्युक्त घटना के कई दिन बाद रमेशचन्द्र ने सकुटुम्ब पश्चिम की यात्रा की। गङ्गातट के समस्त तीर्थस्थानों का दर्शन करके अन्त में मथुरा-वृन्दावन जाने की इच्छा से वह आगरा पहुँचा। वहाँ रमेश ने प्रधान प्रधान हिन्दू-राजाओं से भेंट की और उन लोगों के साथ जान-पहचान की। उन राजाओं में एक राजा के अनुरोध से रमेश उन राजाओं के परिवारों के साथ अपने परिवार को, नौरोज़ के मेले की रात में, शाही महल के भीतर भेजने को बाध्य हुआ था। हेमलता ने लाचार होकर राजपूत-महिला का वेष धारण किया। वह राजपूतानियों के साथ आगरे के प्रसिद्ध बेगमों के महल देखने गई।

इक्कीसवाँ परिच्छेद

ज़ुलेख़ा का पत्र

हम पीछे कह आये हैं कि नरेन्द्र आगरे के क़िले के भीतर बेगमों के स्नानागार में, आइने में हेमलता के मुँह का प्रतिबिम्ब देखकर आश्चर्य से हक्का-बक्का हो गया था। आख़िर वह बहुत देर पीछे निर्मल आकाश और शान्तवाहिनी यमुना नदी की ओर देख मन ही मन कुछ सोच-विचार करता हुआ अपने डेरे की ओर विदा हुआ। नरेन्द्र उस जगह आया जहाँ उसने जनाने कपड़े पहने थे। वहाँ एक चिराग़ जल रहा था, पर कोई मनुष्य न था। वह द्वार बन्द करके अपने बदन से जनाने कपड़े उतारने लगा तो उसके वक्षःस्थल से एक चिट्ठी नीचे गिरी। उसने झट उसे उठाकर देखा। वह उर्दू भाषा में लिखी थी। नरेन्द्र दिये के निकट बैठ गया और पत्र खोल कर पढ़ने लगा। दो-एक पंक्तियाँ पढ़ते ही उसने समझ लिया कि यह ज़ुलेख़ा का पत्र है। तब वह और अचम्भे के साथ पढ़ने लगा। पत्र में लिखा था:—

"प्यारे नरेन्द्र!

मैं उन्मादिनी हूँ, हतभागिनी हूँ, इसी से यह पत्र लिख रही हूँ। मैं नहीं जानती कि क्या लिख रही हूँ। मेरी आँखों के सामने चारों ओर अँधेरा छाया है। मुझे कुछ सूझता नहीं। मेरा सिर घूम रहा रहा है, तथापि मृत्यु के पूर्व एक बार अपने मन की बात तुमसे कहे जाती हूँ। जब यह चिट्ठी तुम्हारे हाथ पड़ेगी उस समय यह अभागिनी इस संसार में ढूँढ़ने से भी कहीं न मिलेगी।

"मैं शाहजहाँ की बड़ी बेटी जहानआरा की एक परिचारिका हूँ। जिस दिन काशी का युद्ध हुआ था उस दिन किसी कार्यवश मैं और मशरूर नाम का एक ख़ोजा दोनों राजा जयसिंह के खेमे में थे। उसी दिन युद्ध में घायल होकर तुम उस खेमे में लाये गये थे। तुमको देखते ही मेरा दिल हाथ से जाता रहा। उसी दिन प्रेम-भुजङ्गम ने मेरे हृदय को डस लिया। उस दिन से मैं प्रतिदिन विष की ज्वाला से जलने लगी, पर मैं इस यन्त्रणा को सहकर तुम्हारी सेवा में प्रवृत्त हुई। मैं सारी रात जाग-जाग कर तुम्हारा मुँह देखा करती थी। जब मैं तुम्हारे आयत ललाट, विशाल नेत्र और स्मित-विकसित मुँह को देखती थी तब बावली बन जाती थी। बेहोशी की हालत में कभी-कभी तुम क्रोध करके अस्तव्यस्त कह बैठते थे। उन बातों का कुछ ख़याल न करके मैं मानसिक पीड़ा से चुपचाप रोया करती थी। उस अचेतनावस्था में तुम जब कभी स्नेह से मेरा हाथ पकड़ते थे उस समय मेरा समस्त शरीर रोमाञ्चित हो जाता था। क्यों हो जाता था—मैं नहीं जानती। जब घर में कोई नहीं रहता था तब मैं तुम्हें निद्रित देख बड़ी उत्सुकता के साथ तुम्हारा मुँह चूमती थी, मुझे उन्मादिनी जानकर इसके लिए क्षमा करना।

"जब तुम्हारे बच जाने की आशा हुई तब तुम नाव पर चढ़ाकर बनारस से दिल्ली लाये गये। मैं किसी युक्ति से तुमको छिपा कर शाही महल के अन्दर अपने घर में ले आई। सिर्फ़ तुम्हारा प्रसन्न मुख देखने ही के लिए मैंने तुम्हें अपने घर में छिपा रक्खा था। मैं तुम्हारी चारपाई के पास बैठ कर सारी रात बिताती थी। तुम्हारे मुँह की ओर बार बार देखने पर भी मुझे तृप्ति न होती थी। रात भर मैं तुम्हारा मुँह निहारा करती थी। जब कभी मैं अपने चित्त के वेग को रोक न सकती तब तुम्हारे चैतन्यशून्य शरीर को छाती से लगाकर अपना हृदय शीतल करती थी।

"दुष्ट मशरूर ने यह हाल शाहज़ादी से जाकर कह दिया। अन्तःपुर में मैंने एक मर्द को लाकर रक्खा है, यह सुनकर शाहज़ादी मारे क्रोध के आगबबूला होगई। उसने मेरे और तुम्हारे प्राण-दण्ड की आज्ञा दी। मशरूर ने फिर शाहज़ादी के पास जाकर तुम्हारी अपूर्व वीरता और सुन्दरता की बात सुनाई। तब उसने अपनी पूर्व की आज्ञा को मनसूख़ कर दिया और मुझे कारागार के भीतर इसलिए क़ैद कर रक्खा कि तुम्हारे आरोग्य हो जाने पर वह फिर हमारे और तुम्हारे दोषों का विचार करेगी।

"मैं क़ैद हुई। दिन-रात घर में अकेली बैठी रहती। किसी को मेरे पास आने की आज्ञा न थी। तुमको न देखने से जो असह्य यातना मुझे होती थी उसका वर्णन मुझसे नहीं हो सकता। आख़िर जब उस यातना को मैं किसी भी तरह नहीं सह सकी तब मैंने द्वारपाल और मशरूर की बड़ी बड़ी ख़ुशामदें करके उन्हें मिला लिया और उन दोनों की सहायता से मैं चुप-चाप तुम्हें देखने जाती थी। जब तुम चङ्गे हो गये तब कभी कभी मेरी ओर एहसान की नज़र से देखते थे। क्या यह बात अब याद होगी? मैं देर तक तुम्हारे पास नहीं ठहर सकती थी और न तुमसे कुछ बात ही कर सकती थी। कठोर-हृदय मशरूर तुरन्त मुझे लौटाकर क़ैदख़ाने में ले जाता था। वहाँ जाकर फिर मैं तुम्हारे ध्यान में लीन हो जाती थी।

"क्रमशः फ़ैसले का दिन आ पहुँचा। क्या वह दिन तुम्हें याद होगा? जहानआरा रत्नजटित सोने के सिंहासन पर बैठी थी। उसके चारों ओर अदब के साथ सखी-सहेलियाँ और बाँदियाँ खड़ी थीं। शाहज़ादी साहबा ने उसी दिन पहले-पहल तुमको देखा। उसने जो कठोर आज्ञा दी थी क्या वह तुमको याद है? उसका पैर पकड़ कर मैं कितनी ही रोई-गिड़गिड़ाई, और हाथ जोड़कर कहा, "शाहज़ादी साहबा, मेरे पाप का

क्या यही उचित दण्ड है ? आप भी तो स्त्री-जाति हैं", पर उसने मेरी विनती पर कुछ ध्यान न दिया। जहानआरा! तुम्हारा हृदय क्या पत्थर का बना है ? नीति के मार्ग से क्या तुम कभी विचलित नहीं होतीं ? बेगम साहबा! तुम स्वामिनी हो, मैं तुम्हारी दासी हूँ। मुझे स्वतन्त्रता नहीं है, इसी से मेरे पाप का तुमने इतना कठोर दण्ड दिया है। तुम जो चाहो कर सकती हो, तुम बादशाह की प्यारी लड़की हो, सोने के सिंहासन पर बड़े गर्व से बैठी हो, पर मैं एक बात कहती हूँ। वह यही कि मेरी अपेक्षा भी तुम घोर* पापिनी हो, उसका क्या कुछ दण्ड नहीं है ?

"किस कौशल से मैं उस रात तुमको लेकर क़िले से निकल भागी, यह कहने की कोई आवश्यकता नहीं। तदनन्तर शीघ्र ही तुमने सैनिक वेष धारण कर दिल्ली से कूच कर दिया। यह अभागिनी भी मतवाली बनकर पुरुष-वेष से तुम्हारे साथ साथ चली। नरेन्द्र! मैं तुम्हारी प्रणयपात्री हूँगी, यह आशा मेरे हृदय में न थी। मैं केवल इसी सुख के लिए तुम्हारे साथ लगी कि दिन-रात तुम्हारे पास रहूँगी, प्रेम-पिपासु चकोर की भाँति दिन-रात तुम्हारा मुखचन्द्र देखती रहूँगी। दिन में तुम्हारे मुँह से सुधासनी मीठी मीठी बातें सुनूँगी और रात में साँझ से आधी रात तक या आधी रात से प्रातःकाल तक तुम्हारे निद्रित मुख-कमल की शोभा देखकर हृदय की पिपासा को निवारण करूँगी। इस आशा से मैं तुम्हारे साथ दिल्ली से सिप्रा नदी और सिप्रा से राजस्थान तक बराबर घूमती रही। संसार में कौन ऐसी जगह है, नरक में कौन ऐसा भयङ्कर स्थान है, जहाँ इस सुख की आशा से यह अभागिनी तुम्हारे साथ जाने में आनाकानी करती ?"

*जहानआरा (बेगम साहबा) के प्रणय की कितनी ही बातें उस समय प्रचलित थीं। फ्रांस के एक यात्री ने उसके सम्बन्ध में कितनी ही बातें अपनी किताब में लिखी हैं। ग्रन्थकर्ता।

बत्तीसवाँ परिच्छेद

पत्र की समाप्ति

"नरेन्द्र ! मैं जानती हूँ कि तुम भी किसी को हृदय से चाहते हो। जो हिन्दू-रमणी तुम्हारी प्रेम-पात्री है, उसे भी मैंने देखा है, किन्तु प्रेम के कारण तुम कभी पागल नहीं हुए। मेरी जन्मभूमि तातारदेश है। वहाँ के निवासियों का स्वभाव बहुत ही उग्र होता है। और मेरा स्वभाव तो बाल्यकाल से ही अत्यन्त उग्र था। मुझे क्रुद्ध होते देख बालकगण खेल छोड़कर मेरे सामने से हट जाते थे। मेरे पिता एक लड़ाई में काम आये। तब मैं बाँदी बना कर दिल्ली लाई गई और बादशाह के हाथ बेची गई। स्वाधीनता तो मेरी जाती रही किन्तु उग्र स्वभाव न गया। मालूम होता है, उष्णप्रधान भारतवर्ष के प्रखर सूर्यताप से मेरे शरीर का शोणित और भी गर्म हो उठा। शायद तुम नहीं जानते कि शाही महल में रहकर तातारदेश की स्त्रियाँ कौन काम करती हैं। हम लोग बेगमों के महल की रक्षा करती हैं। अस्त्र-परिचालन करने में हम मूर्ख नहीं हैं। वक्त पड़ने पर तलवार और कटार से अच्छी तरह काम ले सकती हैं। बेगमों की आज्ञा से हम कैसे कैसे भयङ्कर काम करती हैं, यह संसार के साधारण लोग क्या जानेंगे ? उन कठिन कार्यों में लिप्त होकर मैं असाध्य कार्य भी कर गुज़रती थी। मेरे इस असाधारण गुण के कारण बेगम साहबा मेरे उग्र स्वभाव-जनित क्रोध को सहन कर लेती थीं।

"जब दिल्ली छोड़ कर मैंने तुम्हारा साथ पकड़ा तब भी

मेरा स्वभाव कुछ न बदला। मैं दीवानी बनकर तुम्हारे साथ रहने लगी।

"उदयपुर के सरोवर में सन्ध्याकाल नाव पर चढ़कर हम तुम दोनों घूमने जाते थे, यह स्मरण है? मैं तुमको हमेशा ही चिन्तित देखती थी। किन्तु तुम क्या सोचते थे, यह मैं नहीं समझती थी। मैं तुम्हारी चिन्ता का कारण कुछ स्थिर नहीं कर सकती थी। एक दिन मैं नाव में बैठी थी, तुम मेरी गोद में सिर रख कर लेट गये और चन्द्रबिम्ब की ओर देख रहे थे। मैं भी तुम्हारे मुखचन्द्र को निहार रही थी, तुम्हारे बालों को सवांर रही थी और तुम्हारी उँगलियों को अपने हाथ में लेकर खेल रही थी। तुम एकाएक दीर्घनिःश्वास त्याग कर बोले—"हेम! क्या इस जीवन में फिर तुम्हें देखेंगे?" यद्यपि मैं बङ्ग भाषा अच्छी तरह नहीं जानती तथापि यह बात मैं समझ गई। मेरे मन में सन्देह उत्पन्न हुआ।

"स्त्रियों के मन में जहाँ एक बार सन्देह उत्पन्न हुआ तहाँ वह फिर शीघ्र तिरोहित नहीं होता। जब से मैंने तुम्हारे मुँह से हेम का नाम सुना तब से हेम का परिचय जानने के लिए मैं बराबर उत्सुक रहने लगी। तुम्हारी चिट्ठी-पत्री चुरा कर दूसरों से पढ़वाकर सुन लेती थी। बातों ही बातों में तुम्हारे मुँह से मैंने वीरनगर की सारी बातें सुन लीं। तब मेरे मन में ईर्ष्या की आग एक-दम प्रज्वलित हो उठी। मैं अब इस उद्योग में लगी कि तुम्हारे मन से हेमलता के अनुराग को हटा करके वहाँ अपने अनुराग का आसन जमाऊँ।

"हिन्दू-धर्म में तुम्हारी विशेष निष्ठा देखकर मैं एकलिङ्गेश्वर महादेव के मन्दिर के गुसाईं के पास अपने इष्ट-लाभ की आशा से गई। पहले मैं जिन महात्मा के पास गई वे बड़े तेजस्वी और धार्मिक थे। उन्होंने मेरा प्रस्ताव सुनकर मुझे लात मारकर भगा दिया। इस प्रकार मैं तीन चार गुसाइयों के पास गई

और उसी तरह अपमानित होकर अन्त में तुम्हारे परिचित ईश्वर के पास गई। वह प्रचुर धन के लोभ से मेरे इस इष्ट-साधन पर सम्मत हुआ। मैं उसी समय तीन हज़ार रुपये के मूल्य का एक हीरे का कँगना उसको देकर और एक बहुमूल्य मोती की माला दिखलाकर बोली कि यदि तुम किसी कौशल से नरेन्द्र के हृदय से हेमलता की चिन्ता हटा दोगे और मुसलमानी मज़हब उनसे क़बूल करा सकोगे तो यह मोती की माला मैं अपने हाथ से तुम्हारे गले में पहना दूँगी।

"तुम पूछोगे कि इतना धन मुझे कहाँ मिला। इसका उत्तर यह है कि शाहज़ादी की बाँदियों के भी धन की कमी नहीं थी। फिर मैं तो जहानआरा की अन्तरङ्ग दासियों में थी। मुझे धन-सम्पत्ति की कमी क्यों होती? देश के बड़े बड़े अमीर और राजा-महाराजा जब कुछ प्रार्थना करने बादशाह के पास आते तब जहानआरा को बिना कुछ नज़र दिये उन लोगों का कार्य्य सिद्ध न होता था। कोई उच्च पद का प्रार्थी है, कोई अपनी अपहृत धन-सम्पत्ति वापिस कराने के लिए दरबार कर रहा है; किसी ने प्रजा के ऊपर कुछ अत्याचार किया है, उसकी क्षमा चाहता है; किसी ने दूसरे की जागीर हड़प कर ली है, उसकी एक नई सनद चाहता है, युद्ध में कोई सेनापति परास्त हुआ है, उसकी क्षमा चाहता है, और किसी के ऊपर बादशाह का अयुक्त क्रोध हुआ है, उस क्रोध से वह निस्तार पाना चाहता है—इस तरह के प्रार्थी लोग शाही दरबार में प्रतिदिन आते-जाते रहते हैं। वे प्रार्थिगण भाँति भाँति के बहुमूल्य पदार्थ—हीरे, मोती और मानिक आदि उपहार—बेगम साहबा के पास भेजकर प्रधान बाँदियों के द्वारा अपनी अपनी दरख़्वास्त भेजते थे। इस चक्रचाल में बेगम साहबा की बाँदियाँ भी अपनी मुट्ठी गरम करतीं और ख़ूब मालामाल होती थीं।

"इसके अनन्तर शैलेश्वर ने जो जो उपाय रचे थे वे तुम जानते ही हो। वह उपाय विफल हुआ। मेरी आशा पूरी न हुई। मैंने दो दिन उस पर्वत की गुफा में .खुद जाकर तुमसे भेंट की थी। तुम मद्य पीकर नशे में चूर थे। मैं नहीं जानती कि तुमने मुझे देखा या नहीं। प्रथम दिन मैं तुम्हारे पैरों पर गिरकर रोई थी और दूसरे दिन तुम्हारे प्राण लेने पर उद्यत हुई थी। मेरे हाथ से तलवार छूट कर गिर पड़ी। यह पहला ही अवसर था कि तातारियों के हाथ से तलवार गिर पड़ी। मैं ऐसी कमज़ोर हूँ, इसके पहले मैं नहीं जानती थी। फिर तुम्हारे साथ मैं आगरा आई। पता लगाने पर मालूम हुआ कि वङ्गदेश से एक धनाढ्य ज़मींदार आया है। उसके यहाँ तुम्हारी हेमलता को भी मैंने देखा। पापिष्ठ नरेन्द्र, तुम्हारी प्रेमपात्री हेमलता दूसरे की स्त्री है। धिक्कार है तुम्हारे इस गर्हित प्रेम पर! ओफ़! अब यह यातना मुझसे सही नहीं जाती। तीन दिन के अनन्तर, पहर रात बीते, तुम मथुरा के गोलोकनाथ के मन्दिर में उस परस्त्री को देख सकते हो। तुमने मुझे हतभागिनी बनाया, इसलिए मैं भी तुम्हें हतभाग्य बनाकर छोड़ूँगी। इसी लिए मैंने अपना इतना जीवन-वृत्तान्त तुमसे कह सुनाया है और इसी लिए शाही महल में ले जाकर तुमको हेम का दर्शन करा दिया था।

"मेरी मृत्यु निकट आ पहुँची। किन्तु प्रतिहिंसा तातारियों का जातीय धर्म है। मैं अपने जातीय धर्म को नहीं भूल सकती। अब भी मेरे शरीर का शोणित ठण्ढा नहीं हुआ है।

"ओफ़! मेरा सिर घूम रहा है। यदि इस प्यासी को स्नेह-जल देकर तुम जीवन-रक्षा करते तो यह यवनी कभी अकृतज्ञ न होती। जब तक देह में प्राण रहते तब तक—किन्तु यह कहने की अब आवश्यकता ही क्या? इस जीवन में अब तुमसे भेंट न होगी। सदा के लिए विदा होती हूँ। यदि मृत्यु के

अनन्तर फिर कभी तुमसे भेंट होगी तो निष्ठुर नरेन्द्र, मैं अपने हृदय को चीरकर तुमको आन्तरिक भाव दिखलाऊँगी। तब तुम मुझे प्यार करोगे। यदि तब भी तुम्हारी कठोरता दूर न होगी तो इसी कटार से तुम्हारे पाषाण हृदय को खण्ड खण्ड कर डालूँगी।

उन्मादिनी .ज़ुलेखा।"

.ज़ुलेखा का पूरा पत्र पढ़ चुकने पर नरेन्द्र की आँखों से आँसू टपक पड़े। वह चुपचाप चिन्ता करता हुआ बाहर निकल आया। रात नाम-मात्र की थी। सारा शहर निस्तब्ध था। नरेन्द्र टहलता टहलता बहुत दूर निकल आया। देखा, सामने यमुना नदी का प्रखर प्रवाह है।

नरेन्द्र एक लम्बी साँस लेकर वहाँ से लौट रहा था कि उसने देखा, यमुना के कछार में एक जगह कुछ लोग इकट्ठे हो एक मुर्दे को गाड़ रहे हैं। नरेन्द्र के पूछने पर उनमें से एक व्यक्ति ने कहा—जिसकी लाश को हम लोग मिट्टी दे रहे हैं वह पहले बेगम की एक प्रसिद्ध बांदी थी। फिर वह एक हिन्दू सैनिक पर मोहित हो उसके साथ बाहर निकल गई। मालूम होता है, उसी निर्दय सैनिक ने इस समय इसकी हत्या की है। इसके हृदय में यह तेज़ कटार बिलकुल धँसी हुई मिली थी। इस हतभागिनी का नाम .ज़ुलेखा था।

तेंतीसवाँ परिच्छेद

मथुरा

सन्ध्या-समय गम्भीर यमुना नदी के किनारे मथुरा नगरी नवनागरी की भाँति अत्यन्त सुन्दर देख पड़ती है। सूर्यास्त हो चुका है। आकाश में एक एक कर कितने ही तारागण निकल चुके हैं और निकलते ही जा रहे हैं। यमुना के शीतल जल के स्पर्श से वायु में ठंडक आ गई है। सभी लोग शान्तभाव धारण किये अपने अपने कामों में लगे हैं। कहीं किसी तरह का गोल-माल दिखाई नहीं देता। मथुरा के पत्थर के बने घाट यमुना-जल के भीतर दूर तक चले गये हैं। वृक्ष और कुञ्जवन की ओट में मथुरा के गोलोकनाथ का मन्दिर देख पड़ता है।

धीरे धीरे रात गम्भीर हो चली। हेमन्त ऋतु की चांदनी में नदी, गांव, घर, वृक्ष और मन्दिर आदि ने एक विचित्र ही शोभा धारण की। आकाश के समुद्र में मानो चन्द्रमा धीरे धीरे डूबे जा रहे हैं। नदी के जल में दो-एक छोटी नौकाएँ बही जा रही हैं। नदी के दोनों कछारों में हरित वृक्षों की श्रेणी शान्तभाव से खड़ी है। मालूम होता है, जैसे चन्द्रमा की सुधा-सींची किरणों से तृप्त होकर सारा संसार सुख की नींद सो रहा है।

एकाएक मथुरा नगरी के भीतर सायंकाल की पूजा आरम्भ हुई। चारों ओर देव-मन्दिर में शंख-घड़ी-घंटों की धूम मच गई। वह सुमधुर शब्द दूर से सुनने में अत्यन्त प्रिय मालूम होता था। धीरे धीरे वह घण्टा-रव चारों ओर फैलने लगा।

नदी-किनारे एक पत्थर के बँधे हुए घाट पर गोलोकनाथ का मन्दिर है। उस मन्दिर में पूजा-आरती हो रही थी। बहुत से ब्राह्मण और पुजारी लोग उच्च स्वर से सायंकाल का गीत गा रहे थे। उस पूजा-आरती के समय कितने ही दूर-देशीय यात्री उपस्थित थे। उन यात्रियों में स्त्रियों की ही संख्या अधिक थी। यात्री लोग भिन्न-भिन्न देशों से इकट्ठे होकर आज गोलोकनाथ-जी का दर्शन करके जीवन को सफल मान कृतार्थ हुए।

आरती समाप्त हुई। यात्री लोग प्रायः सभी अपने-अपने स्थान पर गये। केवल पाठकों की पूर्व परिचित दो स्त्रियाँ उस मन्दिर के पास एक पेड़ के नीचे खड़ी होकर बातचीत करने लगीं।

हेमलता मुस्कुरा कर बोली—बहन, मुसलमानिन ने कहा था कि आज पहर रात बीतते-बीतते नरेन्द्र के साथ भेंट होगी। उसकी यह बात तो सच न हुई?

शैवलिनी बड़ी बुद्धिमती थी। हेम की बात सुनकर वह झट समझ गई कि यद्यपि हेम हँसते हँसते यह बात कहती है तथापि इसका हृदय आज सचमुच ही उद्वेग से परिपूर्ण हो रहा है। नरेन्द्र के दर्शन की आशा से इसकी छाती आज बड़े वेग से धड़क रही है, और इसका शरीर भी रह रह कर काँप उठता है।

शैवलिनी मन ही मन सोचने लगी कि न मालूम आज क्या होनेवाला है। हेम अभी नौजवान लड़की है। भला-बुरा कुछ नहीं समझती। नरेन्द्र को देखते ही इसे पूर्व की सब बातों का स्मरण हो आवेगा। पूर्वानुराग की असह्य यन्त्रणा को क्या यह सह लेगी? उसने हेमलता से कहा—क्या तुम उस उन्मादिनी की बात का विश्वास करती हो? कौन जाने, नरेन्द्र कहाँ किस देश में है? क्या तुम उसके साथ मथुरा में भेंट होने की आशा कर रही हो?

हेमलता—जुलेखा की और सब बातें तो ठीक हुई थीं।

शैवलिनी—वे लोग इसी प्रकार मिथ्या आशा दूसरों को दिला देती हैं, दो बातें सच कहती हैं तो उसके साथ एक झूठ भी बोल देती हैं। देखो, अभी तक हमारी दासी नहीं आई। यदि मुझे यहाँ आने का रास्ता न मालूम होता तो मैं और तुम दोनों स्थान ही पर लौट जातीं।

हेमलता—देखो बहन, मुझे मालूम हो रहा है जैसे यही हमारा वीरनगर है, और यही गङ्गाजी हैं। मैं बाल्यावस्था में चाँदनी रात में खेलती थी; तुम्हारे साथ खेलती थी और—और—और, सबके साथ खेलती थी। वे सब बातें अभी एक एक कर याद आ रही हैं।

शैवलिनी का चित्त और भी उद्विग्न हुआ। वह अपनी घबराहट के कारण को छिपाने के लिए यह कहकर उत्सुकता दिखलाने लगी कि दासी के आने में इतना विलम्ब क्यों हो रहा है। शैवलिनी के चेहरे या उसकी बात पर ध्यान न देकर हेम कहने लगी—देखो बहन, यह नाव कैसी तीर की तरह चली आ रही है। माँझी लोग किस तेज़ी से नाव खे रहे हैं। मालूम होता है, जैसे नाव उड़ती हुई इस तरफ़ आ रही हो।

शैवलिनी ने उस ओर देखा। उसके हृदय की आशङ्का दुगुनी बढ़ गई। जिस बात का सन्देह उसके मन में था वही आगे आई। नाव जब घाट से तीन चार हाथ पर थी तभी एक सैनिक उस नाव से कूद कर घाट पर आ खड़ा हुआ। सैनिक दूसरा कोई नहीं, वही नरेन्द्रनाथ था।

हेम वृक्ष की छाया में थी। इस कारण नरेन्द्र उसे न देखकर मन्दिर के भीतर गया। किन्तु हेम ने उसको देख लिया। नरेन्द्र को देखते ही मानो उसकी नस नस में बिजली दौड़ गई। उसका मुँह एक दम लाल होगया। कुछ ही देर बाद उसके चेहरे पर ज़र्दी छा गई। उसका शरीर काँपने लगा।

मस्तक पर पसीने की बूँदें झलकने लगीं। बेहोश होकर वह धरती पर गिरा ही चाहती थी कि शैवलिनी ने लपककर उसे सँभाल लिया। जब हेम का मिजाज़ कुछ ठिकाने आया तब शैवलिनी ने गम्भीर स्वर से कहा—हेम, मैं तुमको बहन से भी बढ़कर चाहती हूँ। मेरी बात मानो तो आज नरेन्द्र के साथ भेंट न करो। डेरे पर लौट चलो। तुम भी मुझे बड़ी बहन की तरह मानकर मेरा आदर करती हो। मेरी बात सुनो। यहाँ से उठ चलो। तुम अभी बालिका हो, हृदय के वेग को रोकना नहीं जानतीं। आज बहुत दिनों के बाद एकाएक नरेन्द्र से भेंट होने और उसके साथ बातचीत करने पर क्या विपत्ति होगी—यह भगवान जानें।

शैवलिनी की यह बात हेम ने सिर नीचा करके सुन ली। वह देर तक धरती की ओर देखती रही। उसकी आँखों से दो बूँद आँसू टपक कर स्वच्छ बालू पर गिरते ही अदृश्य हो गये। उसने फिर धीरे धीरे अपना सिर ऊँचा किया। अब उसके चेहरे पर उद्वेग का चिह्न भी दिखाई नहीं देता। उसका मुख शान्त और प्रसन्न दीख पड़ा। हाँ, उसकी आँखों के आँसू अब तक सूखे न थे।

हेमलता शैवलिनी की ओर देखकर बोली—बहन, तुम मुझे प्राणों से भी बढ़कर प्रिय हो, मुझ पर तुम पूरा विश्वास रक्खो। इतने दिन तक जो तुमने धर्म का उपदेश दिया है वह वृथा नहीं हो सकता। वह सब मेरे हृदयपट पर अङ्कित है। मैं अविश्वासिनी नहीं हूँ। इतने दिनों बाद आज मेरी देवपूजा सार्थक हुई। इस पवित्र भूमि में, इस पवित्र देवमन्दिर में, खड़ी होकर मैं अविश्वासिनी न बनूँगी। जो मेरे प्रधान देवता हैं, जो देवतुल्य पति मुझ पर अनुराग रखते हैं, जो मेरे जीवन के सर्वस्व हैं, उनके निकट यह दासी प्राण रहते अविश्वासिनी न होगी। बहन, तुम मुझ पर सन्देह न करो। मुझे खोटी मत

समझो। यदि तुम मुझे खोटी समझोगी तो इस संसार में मुझ अभागिनी को कौन प्यार करेगा ?

हेमलता की आँखों से आँसू बहकर उसके दोनों कपोलों को भिगो रहे थे।

हेमलता की यह बात सुनकर शैवलिनी का चित्त शान्त हुआ। उसके नेत्रों में भी आँसू भर आये। वह बड़े स्नेह के साथ हेम की आँखों से आँसू पोंछ कर बोली—हेम, मुझे क्षमा करो। तुम धर्मपरायणा हो। तुम पतिव्रता हो। मैंने जो तुम्हारे ऊपर कुछ सन्देह किया था, उसके लिए मैं तुमसे क्षमा माँगती हूँ।

हेमलता—बहन, तुम क्षमा की बात क्या कहती हो ? तुम मुझसे क्षमा की प्रार्थना न करो। तुम्हारी दया, तुम्हारी प्रीति, और तुम्हारे ऋण को मैं इस जन्म में न चुका सकूँगी। मैं सात जन्म तक तुम्हारी सी बहन पाऊँ, यही मैं बार बार भगवान से माँगती हूँ।

शैवलिनी ने हेमलता को छाती से लगा लिया फिर दोनों चुप हो रहीं। दोनों की आँखों से आँसू बह रहे थे। अब शैवलिनी ने कहा—रात होती है। जाओ, नरेन्द्र से भेंट कर आओ।

शैवलिनी वहीं पेड़ के नीचे बैठकर हेमलता के आने की प्रतीक्षा करने लगी। हेमलता मन्दिर में गई। उसके हृदय में अब नाम-मात्र को भी उद्वेग नहीं है। वह धीरे धीरे नरेन्द्र के पास जा खड़ी हुई और सिर झुका कर धरती की ओर निहारने लगी।

बहुत दिनों में हृदय की आराध्य देवी हेम को देखकर नरेन्द्र का जी उद्वेग से भर गया। वह कुछ बोल न सका। केवल हेम का हाथ पकड़कर निर्निमेष दृष्टि से उसके सुललित मुख-चन्द्र की ओर देखने लगा। नरेन्द्र का शरीर काँपने लगा। उसकी

आँखों से झर झरकर आँसू गिरने लगे। नरेन्द्र की इस अवस्था को हेम न सह सकी। वह झट अपनी दृष्टि हटाकर नीचे की ओर देखने लगी। उसकी आँखों में आँसू भर आये।

बहुत देर में हेमलता नरेन्द्र की ओर स्थिर दृष्टि से देखकर बोली—नरेन्द्र!

नरेन्द्र ने देखा, हेम के चेहरे पर न तो उद्वेग का चिह्न है और न कुछ लज्जा का ही चिह्न है। उसका चेहरा साफ़ आइने की तरह झलक रहा है। हेमलता फिर धीरे धीरे बोली—नरेन्द्र!

चौंतीसवाँ परिच्छेद

माधवी-कङ्कण का यमुना में विसर्जन

श्री लोकनाथजी के मन्दिर के सभी दीप प्रायः एक एक करके बुझ गये हैं। जो लोग बाहर के थे वे दर्शन करके चले गये हैं और मन्दिर के रहनेवाले सभी सो गये हैं। मन्दिर पर और खम्भों के ऊपर चन्द्रमा की सुधास्निग्ध स्वच्छ किरणें पड़ने से उनकी शोभा और भी बढ़ गई है। एक तरफ उन खम्भों की छाया की श्यामल श्री देखकर चित्त में एक अनिर्वचनीय आनन्द उत्पन्न हुए बिना नहीं रहता। पास ही अतिविस्तृत यमुना की धारा कलकल शब्द करती हुई प्रवाहित हो रात्रि की निस्तब्धता को भङ्ग कर रही है। यमुना की जल-हवा रह रह कर मन्दिर के भीतर प्रवेश करके मन्दिरस्थ सभी लोगों के शरीर को कँपा देती है। उस सुहावनी रात में मन्दिर के एक खम्भे की छाया में नरेन्द्र और हेमलता दोनों चुपचाप खड़े हैं।

हेमलता ने गम्भीरतापूर्वक कहा—नरेन्द्र, बहुत दिनों में आज तुमसे भेंट हुई है। अब कौन जानता है कि फिर कब भेंट होगी। आओ, हम तुम दोनों अपने मन की बात कह कर जी के बोझ को हलका करें। बाल्यकाल में हम तुम्हारे साथ गङ्गा के किनारे बालू पर खेलती थीं, उपवन में घूमा करती थीं और भाँति भाँति के आशारूपी स्वप्न देखा करती थीं। अब तुमने सैनिक व्रत धारण कर लिया है और हम दूसरे के साथ ब्याही गई हैं। नरेन्द्र! बाल्य-काल के उस दुःस्वप्न को अब एक-दम भूल जाओ।

यह कहकर हेमलता चुप हो रही, फिर कुछ देर के बाद बोली—यदि भगवान दूसरी घटना कर देते तो हम लोगों का जीवन अन्य रूप से सङ्गठित होता, साथ ही बाल्यकाल का स्वप्न भी सफल हो जाता। किन्तु स्वप्न की निष्फलता से हम लोगों को भूलकर भी भाग्य की निन्दा न करनी चाहिए। जिस ईश्वर ने तुमको पराक्रम दिया है, यश दिया है, उनका गुण गाओ; वे अवश्य तुमको सुखी करेंगे। जिन्होंने इस संसार में मेरे रहने को जगह दी है, देवतुल्य पति दिया है, शैवलिनी के सदृश ननँद दी है और धनसम्पत्ति दी है वे जगदीश्वर दया के समुद्र हैं। वही सबकी सुधि लेते हैं। उनको मैं बार बार प्रणाम करती हूँ।

हेमलता ने हाथ जोड़ कर, विश्वकर्ता को लक्ष्य करके प्रणाम किया। उसका निर्मल, पवित्र और शान्त भाव से भरा हुआ मुख-मण्डल उसके हृदय की पवित्रता का परिचय दे रहा था।

नरेन्द्र विस्मित होकर हेमलता के मुँह की ओर देखने लगा। उसके मुँह से एक भी शब्द न निकला। हेमलता फिर कहने लगी—नरेन्द्र! मैंने सुना है कि तुम कई एक युद्धों में वीरता दिखला चुके हो, अनेक देश देख चुके हो और देश-देशान्तर में सुख्याति प्राप्त कर चुके हो। तुम धर्मशील हो, ईश्वर तुमको सुख से रक्खें। यदि तुम युद्ध से परिश्रान्त होकर विश्राम चाहो, यदि तुम्हें किसी तरह का कष्ट हो या कभी तुम्हारे ऊपर कोई विपत्ति आ पड़े तो तुम बेखटके वीरनगर चले आना। वहाँ तुम्हारे आने से सभी लोग आह्लादित होंगे। मैं अपने स्वामी के कोमल हृदय को जानती हूँ। वे तुमको छोटे भाई के बराबर मानते हैं और तुम्हें प्यार करते हैं। जब तब वे तुम्हारी चर्चा किया करते हैं। तुम वीरनगर आओगे तो वे अत्यन्त प्रसन्न होंगे।

नरेन्द्र चुपचाप खड़ा था। हेम की बातें उसके कानों में

सुधासिक्त अपूर्व संगीत-ध्वनि की तरह आनन्द उपजा रही थीं। उसका हृदय उमग रहा था, और दोनों आँखें आनन्दाश्रु से पूर्ण थीं।

हेम फिर कहने लगी—वहाँ तुम्हारे जाने से शैवलिनी भी हद से ज़्यादा प्रसन्न होगी। और मैं जब तक जीती रहूँगी छोटी बहन की तरह तुम्हारी सेवा करूँगी। भैया नरेन्द्र! मैं तुमको जभी देखूँगी, प्रसन्न हूँगी।

हेमलता के मुँह से ऐसा सुमधुर स्नेहवाक्य सुनकर नरेन्द्र की आँखों में आँसू भर आये। बड़ी देर तक दोनों चुपचाप रहे

आख़िर हेमलता ने फिर धीरे धीरे गम्भीर स्वर से कहा—नरेन्द्र! एक बात और है। तुम अपने जी में कुछ और भाव न समझो। मेरे इस अपराध पर ध्यान न दो। बात यह है कि जब तुम वीरनगर छोड़कर चलने लगे तब प्रणय का निदर्शन-स्वरूप मुझे एक भूषण दे आये थे। उसके पहरने की मैं अब अधिकारिणी नहीं। नरेन्द्र! वह अपनी चीज़ तुम लौटा लो।

हेमलता ने अपनी कलाई पर के कपड़े को जरा खिसका लिया। नरेन्द्र ने देखा, जो माधवी-कङ्कण उसने दिया था वह अब भी हेम के हाथ में है। लता सूखकर टूक टूक हो गई थी। इससे हेमलता ने उन सब टुकड़ों को एक सोने के तार से गूँथ कर साथ में ले लिया था। आज वह उसी को पहनकर आई है।

दोनों को पहले की बात याद हो आई। दोनों के हृदय को विषाद की छाया ने ढक लिया। दोनों बहुत देर तक चुप रहे। हेमलता की सुन्दर कलाई और उस माधवी-कङ्कण को नरेन्द्र निर्निमेष दृष्टि से देखने लगा। देखते देखते उसकी आँखों में आँसू भर आये। वह फिर देख न सका और न अपने आँसुओं को ही रोक सका। उसकी आँखों से आँसू टपक टपक कर हेमलता के हाथ और बाँह पर गिरने लगे। हेमलता पाषाणमूर्त्ति

की भाँति निश्चलभाव से खड़ी रही। अब नरेन्द्र एक लम्बी साँस लेकर बोला—हेम, तो क्या हमें हमेशा के लिए अपने हृदय-मन्दिर से हटाना चाहती हो? क्या अब एक-दम हमें भूल जाओगी?

हेमलता—मैं इस जन्म में क्या तुमको कभी भूल सकती हूँ? जब तक इस देह में प्राण रहेंगे, तुमको सगे भाई की तरह समझूँगी, किन्तु यह कङ्कण तुमने और ही तरह के प्रणय का चिह्न-स्वरूप मुझको दिया था। नरेन्द्र, मैं अब उस प्रणय की अधिकारिणी नहीं। तुम बुरा मत मानो, और न अपने मन में किसी तरह का खेद ही मानो। मैंने इन कई वर्षों से इस कङ्कण की आराधना की है, इसको अपने हृदय में लगा कर रक्खा है। मैं कई बार इसे अपने माथे पर चढ़ा चुकी हूँ। अब इसका परित्याग करते मुझे जो कष्ट होता है वह मेरा जी ही जानता है। अब इस कँगने को तुम मेरे हाथ से उतार लो। इस पर अब मेरा अधिकार नहीं है। मैं इस कङ्कण को अपने हाथ में रखने योग्य न रही। जिस माधवी-कङ्कण को प्रणय-भूषण समझ कर मैं किसी समय फूले अङ्ग न समाती थी उसे अब अपने लिए मैं लांछनमात्र समझती हूँ। मैं अपने पति के निकट अविश्वासिनी होना नहीं चाहती।

नरेन्द्र इस पर कुछ न बोला। उसने चुपचाप हेमलता के हाथ से कङ्कण खोल लिया।

तब हेमलता ठंडी साँस लेकर बोली—नरेन्द्र, लो मैं अब जाती हूँ। तुम धार्मिक हो, बाल्यावस्था से ही धर्म में तुम्हारी निष्ठा है, उस धर्मनिष्ठा की कभी उपेक्षा न करना। कैसा ही संकट का समय क्यों न आ पड़े, अपने धर्म को न भूलना। भगवान तुम्हें सदा सुखी रक्खेंगे। उन्होंने जिसके लिए जो व्यवस्था ठहरा रक्खी है, उसी व्यवस्था के अनुसार हम लोगों को चलना चाहिए। कैसे कैसे सुन्दर फूल दो-एक दिन तक

अपनी अनुपम शोभा और सुगन्ध चारों ओर फैला कर सूख जाते हैं। प्रकाश को देख कर पक्षी आनन्द का गान गाते हैं। उनका यही काम है। नरेन्द्र, तुम वीर पुरुष हो, दुश्मनों पर विजय प्राप्त करो, देश का मङ्गल करो; यथासाध्य जाति की उन्नति करो और शरणागत दीन-दुखियों पर दया करो। जिस ईश्वर ने मुझको देवतुल्य स्वामी दिया है वही मेरे धर्म की रक्षा करेंगे। वह सहाय हों, जिसमें स्वामी की सेवा में मुझसे कभी कोई भूल न हो, स्वामी के चरण-कमलों में मेरी भक्ति सदा अटल बनी रहे, मैं उनकी चिर पतिव्रता विश्वासिनी दासी होकर रहूँ! भाई नरेन्द्र! बाल्यकाल में तुमने जो मुझे धर्म की शिक्षा दी थी उस धर्म की शिक्षा इस पवित्र देव-मन्दिर में फिर एक बार दो। आओ भाई, हम तुम दोनों प्रतिज्ञा करें कि कभी धर्म-मार्ग का त्याग न करेंगे। मैं यावज्जीवन पातिव्रत का पालन करूँगी, और तुम भी आज से पर-स्त्री को बहन के बराबर समझना—यह कहकर हेमलता गोलोकनाथजी की मूर्त्ति के सम्मुख प्रणत हुई। नरेन्द्र ने भी चुपचाप दण्डवत् प्रणाम किया।

हेमलता उठकर फिर बड़ी नम्रता से नरेन्द्र का हाथ पकड़ कर बोली—भाई नरेन्द्र, अब रात बहुत बीती। मुझे अब जाने की आज्ञा दो। मैं तुमको बड़े भाई के तुल्य समझ सदा याद करूँगी। तम भी अपनी छोटी बहन को कभी न भूलना।

हेमलता आँखों से आँसू पोंछती हुई धीरे धीरे मन्दिर से चली गई। जितनी देर तक दृष्टि का अवरोध न हुआ, नरेन्द्र उसकी ओर देखता रहा। जब वह दृष्टि से बाहर निकल गई तब नरेन्द्र के विषाद की सीमा न रही। संसार में अभागे से भी अभागा मनुष्य नरेन्द्र के उस रातवाले शोक और विषाद को देखकर अपना दुःख भूल जाता और उसकी असह्य यन्त्रणा पर रो देता। भाग्यहीन नरेन्द्र के हृदय का आशा-प्रदीप आज बुझ गया। उसके प्रणय का इतिहास आज समाप्त होगया।

माधवी-कङ्कण को हृदय से लगाये नरेन्द्र रात भर यमुना-किनारे बैठा रहा। हेमलता की बातें बार बार उसके हृदय में उदित होने लगीं—"इस माधवीकङ्कण को उतार लो। इसके रखने का अब मुझे अधिकार नहीं। नरेन्द्र, मैं अब अपने पति के निकट अविश्वासिनी बनकर न रहूँगी" इत्यादि हेम की उक्ति को नरेन्द्र मन्त्र की भाँति मन ही मन जपने लगा। तो क्या अब उस प्रणय-निदर्शन के रखने का अधिकार नरेन्द्र को ही है? सवेरा होते ही नरेन्द्र ने उस हृदयसंलग्न माधवी-कङ्कण को यमुना-जल में फेंक दिया। वह सूखा कङ्कण यमुना-जल में तैरता हुआ थोड़ी देर में न जाने कहाँ चला गया।

पैंतीसवाँ परिच्छेद

उपसंहार

पृथ्वी-कङ्कण का विसर्जन और इस उपन्यास का अन्त साथ ही साथ हुआ। केवल उपन्यास के चरित-नायक और नायिका के सम्बन्ध में दो-एक बातें कहने को रह गई हैं।

हम पीछे कह आये हैं कि शाहशुजा बङ्गदेश से फिर युद्ध करने के लिए आ रहे थे। जाड़े के मौसम में प्रयाग के समीप शुजा और औरंगज़ेब के बीच घोर संग्राम हुआ। दो दिन तक दोनों दलों में घमासान युद्ध होता रहा। तीसरे दिन शुजा पराजित होकर युद्धक्षेत्र से भाग खड़ा हुआ। यशवन्तसिंह ने इस युद्ध में औरंगज़ेब के विरुद्ध आचरण करने की चेष्टा की थी; किन्तु वे उस दूरदर्शी तीक्ष्णबुद्धि, युद्धकुशल औरंगज़ेब की कुछ विशेष हानि न कर सके। इससे लज्जित होकर अपने देश को लौट गये।

शुजा प्रयाग से पटना, पटने से मुङ्गेर, मुङ्गेर से राजमहल और वहाँ से गङ्गापार होकर तोंडा को भाग गया। औरंगज़ेब का पुत्र शाहज़ादा मुहम्मद और सेनापति अमीर जुम्ला उसके पीछे पीछे जा रहा था। ये लोग कहीं भी उसके पैर जमने न देते थे। तोंडे में युवराज मुहम्मद ने शुजा की बेटी से ब्याह करके शुजा का पक्ष ग्रहण कर लिया। किन्तु अमीर जुम्ला के आगे ससुर-जमाई दोनों परास्त हुए। इसके अनन्तर पिता के कपटपत्र पर विश्वास करके मुहम्मद अपनी स्त्री के साथ, शुजा का पक्ष त्याग कर, तोंडे से चल दिया। भाग्यहीन शुजा भाग

कर अराकान देश को गया। वहाँ के राजा के साथ विरोध होने के कारण वह सेना-सहित मारा गया। शुजा की लड़की से अराकान के राजा ने ब्याह किया। कहा जाता है कि शुजा की अत्यन्त सुन्दरी प्रधान बेगम प्यारीबानू ने मारे विषाद के आत्म-घात कर लिया। जिस शाह शुजा ने बीस वर्ष तक बड़ी योग्यता के साथ बङ्गाल का शासन किया था; जो युद्ध में साहस, प्रजा पर दया और हिन्दुओं के साथ उदारता दिखलाकर मशहूर हुआ था; जिसकी राजधानी राजमहल का राजभवन दूसरा इन्द्रालय था; और जहाँ दिन रात आनन्द की तरंग उछलती रहती थी; लाखों आदमी जिसकी आज्ञा के वशवर्ती थे, उसकी क़ब्र के लिए मृत्यु के समय डेढ़ हाथ धरती न मिली! वह अनाथ की भाँति जहाँ का तहाँ पड़ा रह गया। विदेश में जाकर शत्रु के हाथ से परिवार-सहित काल का कलेवा बना।

दारा श्यामनगर या फ़तेहआबाद के युद्ध में हार कर सिन्धु देश की ओर भाग गया। किन्तु औरंगज़ेब की कट्टर सेना उसको वहाँ से पकड़ कर दिल्ली ले आई। निर्दय, कठोरचित्त औरंगज़ेब ने पहले तो बड़े भाई का यथेष्ट अपमान किया और अन्त में उसे मरवा कर वह शान्त हुआ। कारागार में क़ैद मुराद भी शीघ्र ही बादशाह की आज्ञा से क़त्ल किया गया। तीनों भाइयों के हृदय के रक्त का टीका माथे में लगा कर नृशंस औरंगज़ेब भारतवर्ष के राजसिंहासन पर बैठा।

जिस दिन मथुरा में हेम से नरेन्द्र की भेंट हुई थी, उसके बाद नरेन्द्र एक-दम लापता हो गया। वङ्गदेश में लौटने पर हेम-लता ने नरेन्द्र को अनेक स्थानों में ढुँढ़वाया, महानुभाव रमेश-चन्द्र ने देश देश में यह ख़बर भेज दी कि यदि नरेन्द्र लौट कर वीरनगर आवेंगे तो उनके पिता की ज़मींदारी का आधा हिस्सा उन्हें मिलेगा। किन्तु उस दिन के बाद फिर नरेन्द्र को किसी ने कहीं नहीं देखा।

हेमलता वीरनगर में रमेशचन्द्र के साथ सुख से समय बिताने लगी। मथुरा के देवमन्दिर में उसने जो प्रतिज्ञा की थी उसे अच्छी तरह निबाहा। धर्मपरायणा हेम तन मन से स्वामी की सेवा में लग पड़ी। उसके मन से और तरह की चिन्ता दूर होगई। वह पतिभक्ति के सिवा दूसरा धर्म न जानती थी। उसके हृदय में स्वामी ही एक-मात्र आराध्य देव बनकर दिन-रात निवास करने लगे। रमेशचन्द्र की सेवा के फलस्वरूप हेमलता के गर्भ से क्रमशः हेमन्तकुमारी और सरयूबाला नामक दो कन्यायें तथा प्रतापचन्द्र नाम का एक पुत्र हुआ। बीस वर्ष पहले रमेशचन्द्र, नरेन्द्रनाथ और हेमलता, तीनों जिस तरह सन्ध्या-समय गङ्गा के किनारे खेलते थे, हेमलता ने देखा कि उसी तरह उनके बेटे-बेटियाँ उस जगह खेल रहे हैं और उन बालकों की आनन्द-ध्वनि से गङ्गातटवर्ती उपवन प्रतिध्वनित हो रहा है। संसार की यही गति है। एक दल गया, दूसरा आया। कोई जगह कभी खाली नहीं रहती। धार्मिक माता-पिता की सन्तान को जिस प्रकार सच्चरित्र, सुशील स्वरूपवान होना चाहिए वैसी ही रमेश की सन्तान थी। रमेश के बालक और बालिकाओं का जैसा सुन्दर स्वरूप था वैसा ही उनका स्वभाव था।

ब्याह होने के प्रायः दस वर्ष बाद हेमलता एक दिन अपने बालकों को लेकर एक संन्यासी के दर्शन करने गई। वीरनगर से कई कोस पर एक प्रसिद्ध सेमल का वृक्ष था। उसकी जड़ से तीन तरफ़ पतली दीवाल की तरह तीन पाट निकल आये थे। उस पुराने वृक्ष के वे पाट इतने ऊँचे हो गये थे और इतनी दूर तक फैल गये थे कि उनके देखने से जान पड़ता था जैसे उन पाटों का एक कपाटशून्य घर बन गया हो। उस अपूर्व घर में एक संन्यासीजी कई वर्षों से टिके थे। उस गाँव की स्त्रियाँ और बालक-बालिकायें स्नेहपूर्वक संन्यासी के भोजनार्थ प्रतिदिन दूध और फल-मूल ला देती थीं। उसी से उनका जीवन-निर्वाह होता

था। वे दिन भर परमेश्वर के ध्यान में लीन रहते थे। सायंकाल को वे उस गाँव के प्रत्येक गृहस्थ के घर जाते थे। शोकाकुलों को सान्त्वना देना, रोगियों की सेवा करना, दुर्बलों की सहायता करना और दीनदुखियों के कष्ट दूर करना ही उनके जीवन का प्रधान कार्य था। आधी रात तक वे इन कामों को करके फिर उस पेड़ के नीचे पाटनिर्मित घर में लौट आते थे। वहाँ आकर वे घास पर सो रहते थे। क्या जाड़ा, क्या गरमी और क्या बरसात, बारहों महीने उनके सोने का यही नियम था। उस अद्भुत तरुगृह और उस सच्चे संन्यासी के दर्शनार्थ दूर दूर से लोग आते थे।

हेमलता उस वृक्ष से कुछ दूर पर नाव से उतरी। वहाँ से वह अपने बाल-बच्चों को लिये धीरे धीरे उस पेड़ के पास आ पहुँची। संन्यासी की ओर लक्ष्य करके उसने हाथ जोड़ कर प्रणाम किया। फिर अपने छोटे लड़के को गोद में लेकर खड़ी हो वह संन्यासी की ओर देखने लगी। हेमलता की टकटकी बँध गई। उस ओर से वह अपनी दृष्टि को दूसरी ओर न फेर सकी। चुपचाप चित्रवत् खड़ी होकर संन्यासी का मुँह देखने लगी।

संन्यासी भी स्थिर दृष्टि से हेमलता की ओर देख रहे थे। उन्होंने अनुरक्त दृष्टि से हेमलता को प्रणाम करते देखा। फिर वे सतृष्ण नयनों से हेमलता के सुन्दर बालक और बालिकाओं की ओर देखने लगे। उन सबको देखते देखते ऐसा प्रतीत हुआ जैसे संन्यासी का हृदय अनुराग से भर गया हो। साथ ही उनकी आँखों में आँसू भी दिखाई दिये। आखिर संन्यासी ने धीरे धीरे हेम के पास आकर उसके बच्चों के माथे पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया। फिर हेमलता की ओर स्थिर दृष्टि से देख कर कहा—मैं आशीर्वाद देता हूँ, तुम्हारे देवतुल्य स्वामी में तुम्हारी अचल भक्ति हो। तुम जन्म जन्म पतिव्रता होकर पति की विश्वासिनी बनो।

यह कह कर संन्यासीजी धीरे धीरे वहाँ से चले गये। इसके अनन्तर फिर कभी किसी ने उस पेड़ के तले संन्यासी को नहीं देखा। संन्यासी उस गाँव से कहाँ गये, यह भी किसी को मालूम नहीं।

॥ समाप्त ॥